रामकथा मन्दाकिनी

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे



रामकथा मन्दाकिनी

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे
कुलपति
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ.प्र.)

निर्मल पब्लिकेशन्स
दिल्ली-110094

ISBN : 978-81-86400-334-6

प्रकाशक :

निर्मल पब्लिकेशन्स
ए-139, गली नं. 3, कबीर नगर
दिल्ली-110094
मोबाइल : 9350295129

प्रथम संस्करण : 2014
द्वितीय संस्करण : 2016
मूल्य : 350.00 रुपए

शब्दांकन :
अंकुर कंप्यूटर्स
दिल्ली-110053

मुद्रक :
शिवानी आर्ट प्रैस, शाहदरा, दिल्ली-110032

आत्माभिव्यक्ति

रामकथा भारतीय जनमानस में रची-बसी एक ऐसी दिव्य कथा है जिसके बिना न तो कोई भारतीय है, न कोई भारतीयता है और न ही कोई भारती है। राम भारत, भारती एवं प्रत्येक भारतीय के रोम-रोम में रमे हैं । राम इस माटी के कण-कण में समाये हैं। राम इस राष्ट्र के मंगल हैं। वास्तव में यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो भारतीय हिन्दू जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन पर जो प्रभाव राम के चरित्र का है, वह किसी दूसरे का नहीं। हिन्दू परिवारों में बालकों के जन्म के समय ऐसे गीत गाये जाते हैं मानो स्वयं राम ही उत्पन्न हुए हों। विवाह के समय भी ऐसे मांगलिक गान होते हैं, मानों राम एवं सीता का विवाह हो रहा हो। दो जन आपस में अभिवादन के समय राम-राम, सीताराम तथा जय श्रीराम से ही प्रणामाञ्जलि करते हैं। आशीर्वादात्मक अभिव्यक्ति में भी श्रीसीताराम जी के सद्गुणों की प्राप्ति तथा अहैतुकी कृपा हेतु मंगल कामना करते हैं। मानव जीवन के षोडश संस्कारों में राम सीता जी के आदर्शों से अभिभूत मंगलमय जीवन की ही अभ्यर्चना करते हैं। सोते समय रामजी का स्मरण करके सोना, जागरण के समय राम जी का नामोच्चारण करते हुए विस्तर त्यागना, नहाते समय राम नाम स्मरण, तिलक लगाते, पूजा करते, भोजन करते, किसी कार्य से पूर्व राम जी का स्मरण करना जैसे यह द्योतित करता है कि राम भारतीयों के श्वाँस-प्रश्वाँस में समाये हुए हैं। किंबहुना, गोस्वामी तुलसीदास जी तो यहाँ तक लिख देते हैं 'राम राम कहि जे जमुँहाहीं, तिन्हँहिं न पाप पुंज समुहाँहीं' अर्थात जमुहाई या अंगड़ाई लेने पर राम-राम कहना, छींकने पर राम, प्रत्येक शारीरिक गतिविधियों के संचालन में राम, किसी हार्दिक प्रसन्नता में जय श्रीराम एवं जय हो राम जी के उद्घोष की आत्माभिव्यक्ति, किसी कष्ट में पड़ने पर हे राम! का दीर्घश्वास में उच्चारण, किंवा मनुष्य शरीर की अन्तिम यात्र भी 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि के साथ ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष राम नाम की मधुर ध्वनि के द्वारा प्राचीन काल से आज तक निनादित ही है, साथ ही अब जो अनुसन्धान हुए हैं वे भारत से बाहर भी दूर-दूर देशों में पहुँचे हुए इस राम नाम के तेजस्विता की उद्घोषणा कर रहें हैं।

हनुमान जी का पूजन, आराधन करते-करते सीताराम जी की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो जाती है, राम भक्ति मार्ग का यह स्वतः सिद्ध एवं मान्य सिद्धान्त है। ऐसी ही मेरी भी आस्था एवं मान्यता है। इसी भक्तिमार्ग से चलते हुए मुझे भी यथाकथञ्चित् हनुमान जी एवं श्री सीताराम जी के श्रीचरणों में भक्ति, अनुरक्ति एवं आसक्ति की अनुभूति हुई। परिणामस्वरूप रामजी की कृपा से ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु शोध विषय भी रामकथा से सम्बन्धित मिला रामायणमञ्जरी का साहित्यिक अनुशीलन। प्रस्तुत विषय पर शोधस्तरीय गहन अध्ययन करते हुए न जाने कितनी बार राम जी का नाम स्मरण कर-करके, रामजी का नाम लिखते हुए उनके नाम, रूप, लीला, धाम के विभिन्न अंगों-उपांगों तथा विविध आयामों में चिन्तन करते हुए रामकथा मन्दाकिनी में अहर्निश गोते लगाते रहने का शुभ संयोग प्राप्त हुआ।

रामकथाश्रित गवेषणात्मक अध्ययन की इस पावन धारा में अवगाहन करते हुए तन-मन तथा सम्पूर्ण जीवन रामजी का हो गया। परिणामस्वरूप भगवान श्रीसीताराम जी की कर्मस्थली, श्रीरामकथास्थली एवं तपस्थली चित्रकूट में ही जीवन-यापन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फिर क्या था—रामकथा गायन, अध्ययन, अध्यापन, शोधपरक चिन्तन-मनन तथा राममय जीवन का प्रत्येक आयाम रामकथा मन्दाकिनी में ही स्नानपूत होने लगा। राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भी श्रीमद्वाल्मीकिरामायण एवं श्रीरामचरितमानस से सम्बन्धित ही कुछ लिखने-पढ़ने तथा कहने-सुनने में ही जीवन की इतिकर्तव्यता का अनुभव होने लगा। इसी पृष्ठभूमि में रामकथाश्रित जो भी शोध-निबन्ध विगत 25-30 वर्षों में लिखे गए उन्हीं के संकलन को रामकथा मन्दाकिनी शीर्षक से यहाँ अभिहित किया गया है। प्रकृत ग्रंथ के 16 शोध-निबन्ध यद्यपि रामकथा के पूर्वाधारित तथ्यों से ही मिलते-जुलते हैं, किन्तु पुनर्शोध (Research) के द्वारा उन विषयों से सम्बन्धित जो मौलिकता उभरकर सामने आती है, निस्संदेह वह रामकथा साहित्य में एक अभिनव प्रयास है। रामकथा मन्दाकिनी के शोध-निबन्धरूपी पावन शीतल जलधार से रामकथा पिपासुओं, भक्तों अनुसन्धित्सुओं एवं विद्वत् समुदाय को जो कुछ भी परितोष मिलेगा वह मेरे जीवन की एक अनमोल उपलब्धि एवं रामजी की कृपा होगी।

।। जय श्री सीताराम।।

विनयावनत

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

संस्थापक एवं महामहिम कुलाधिपति (आजीवन)
धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर
पद्मविभूषण जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी
श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

फोन : 05198-224413, 224463
फैक्स : 05198-224293

रामकथा मन्दाकिनी चित्रकूट चितचारु।
तुलसी सुभग सनेह वन श्री रघुवीर विहारु॥

'रामकथा मन्दाकिनी' जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट के संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं साम्प्रतिक प्रतिकुलपति, साहित्यसौजन्य नदीष्ण प्रो. योगेश चन्द्र दुबे (अवधी) के रामकथाश्रित 16 शोध निबन्धों का संग्रह है, जिसमें कुशल निबन्धकर्ता ने अपनी बह्वर्थ निबन्धना, विद्वत्प्रतिष्ठिता पाण्डित्य परिणति प्रथिष्ठ प्रतिभा के वातायन में जिन अनुच्छिष्ट एवं अनूदित विषयों का स्पर्श किया है, वे इनकी स्वोपज्ञ प्रज्ञा के निदर्शन हैं।

श्री रामकथा के भिन्न-भिन्न आयामों को संस्कृत साहित्य में विकीर्ण एवं तत्तन्मनीषियों से उत्कीर्ण उद्धरण, परिणामपेशल प्रणामाञ्जलियों से इन्होंने जिस चातुरी के साथ शृंगारा और सराहा है कि वह इनके विद्वद्विमृग्य विरुदावली संख्यापन के लिए पर्याप्त है।

मैंने सिंहावलोकनन्याय से इनके निबन्धों के बहुत से अंशों को सूक्ष्मेक्षिका से प्रेक्षित किया। मन को बहुत संतोष हुआ। श्री अवधी का यह शोध निबन्ध संग्रह भगवान श्री सीताराम जी के विशुद्ध विग्रह का समर्चन करता हुआ भारतीय अनुसन्धित्सुओं की सारस्वत यात्रा का पाथेय बनेगा। यह मेरा विश्वास है।

इति मङ्गलमाशास्ते
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
स्वामी रामभद्राचार्य

राष्ट्रपति-सम्मानित
प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र
पूर्वकुलपति

दूरभाष : 0177-6534607
मोबाईल : 094181-76968, 092185-34607
दिनाङ्क ....

नान्दीवाक्

अमेरिका की विदुषी राइस डेविड ने विश्ववाङ्मय की समीक्षा करते हुए, तीन कथानकों को सविशेष रेखांकित किया है ईरान का रुस्तम-सोहराब कथानक, रोम तथा मिश्र का जूलियस सीजर-क्लियोपेट्रा-कथानक तथा भारत का राम-कथानक। परन्तु चारित्रिक वैशिष्ट्य, मानवमूल्यों की रक्षा तथा विश्वबन्धुत्वादि उदात्त लक्ष्यों की सम्पूर्ति को दृष्टि में रखते हुए विदुषी ने रामकथा को 'मोस्ट पावरफुल' बताया है।

ई.पू. छठी सहस्राब्दी में ही संस्कृत भाषा विश्व के विविध अञ्चलों में व्याप्त हो गई थी और उसी के साथ, रामकथा की भी संक्रान्ति उन देशों में हो गई थी।

अरब राष्ट्र में लबिबिन तुर्फा (ई.पू. 11वीं शती) की शायरी में हम चारों वेदों का नाम्ना उल्लेख पाते हैं। जेन्दा-वेस्ता (पारसी धर्मग्रंथ) के बेदिदाद नामक अंश में भगवान् वेदव्यास के ईरान जाने का उल्लेख है तथा उनके अवदान के प्रति कृतज्ञता का भाव भी। पैगम्बर मुहम्मद साहब के चाचा हश्शाप्र अपनी शायरी में, 'महादेव के देश' में एक रात गुजारने की अदम्य आकांक्षा व्यक्त करते हैं। इन सारे सन्दर्भों पर मैंने स्वयं गहन मंथन किया है तथा अपने शोधालेखों में निष्कर्ष सामने रखे हैं। नई पीढ़ी को उनसे लाभान्वित होना चाहिए।

रामकथा एक कालजयी इतिवृत्त है। अपनी सर्वमान्य उदात्तता, चरितानुकरणीयता तथा दुर्लभ जीवनमूल्यों की स्थापना के कारण वह देश, काल एवं व्यक्ति के बन्धन से सर्वथा मुक्त दीखती है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी राष्ट्र का महानायक 'रघुनन्दन राम' ही हो सकता है। राम सम्पूर्ण विश्व-कविता के ग्राह्य गेय नायक हैं जिनके व्यक्तित्व का निर्माण मात्र सद्गुणों एवं जीवनमूल्यों से हुआ है। यही कारण है कि मिस्र के पिरामिडों पर उत्कीर्ण इतिहास से लेकर प्राम्बनान के शिवमन्दिर तक (इण्डोनेशिया) विश्व के दो-तिहाई भागों में रामकथा का प्रचार-प्रसार है।

रामकथा की अभिव्यक्ति किस भाषा में नहीं है। अकेले संस्कृत में ही प्रायः 80 महाकाव्य, 338 खण्डकाव्य तथा सैकड़ों अन्य विधा के ग्रंथ हैं (द्रष्टव्य : मोटारी बापू के महुआ-आश्रम में प्रस्तुत मेरा रामकथा-व्याख्यान) भारतवर्ष में तो, कलि-वाल्मीकि गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा को ऐसा विलक्षण आत्मीय-संस्पर्श प्रदान कर दिया कि लोग रामकथा के आदि गायक प्राचेतस वाल्मीकि को भूल ही गए। रामचरित मानस ही रामकथा का पर्याय बन गया।

मेरे सुयोग्य शिष्यप्रवर आचार्य योगेशचन्द्र दुबे ने भी उसी रामकथा-मन्दाकिनी में अवगाहन कर स्वयं को कृतार्थ किया है। इस ग्रन्थ में प्रकाश्य शोधालेखों को पढ़कर असीम आनन्द एवं उल्लास की अनुभूति हुई। डॉ. दुबे ने सरस, प्राञ्जल तथा बोधगम्य शैली में रामकथा के विविध प्रसंगों की व्याख्या की है, जिनसे नई पीढ़ी लाभान्वित होगी।

मैं ग्रन्थ एवं ग्रंथकार   दोनों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। सस्नेह,

शिमला

अभिराज राजेन्द्र मिश्र
पूर्वकुलपति

विषय-सूची

1

तुलसी के राम

आदि काव्य की रचना के बाद रामकथा को आश्रय बनाकर अनेक उपजीव्य ग्रन्थों की सर्जना संस्कृत वाङ्मय में की गयी। पुनश्च, संस्कृत के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत वर्ष की प्रत्येक आंचलिक भाषाओं में रामकथा पर आश्रित काव्यों के रचनाधर्मिता की एक अक्षुण्ण परम्परा ही चल पड़ी। इसी परंपरा के ध्वजवाही गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी हिन्दी साहित्य (अवधी भाषा) में श्रीराम को नायक बनाकर श्रीरामचरितमानस की रचना की। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी का काव्य एवं उनके नायक प्रभु श्रीराम ने भारतीय वाङ्मय, समाज एवं संकृति पर जो अमिट छाप छोड़ी वह अनुपम-अद्बितीय, विलक्षण तथा अद्भुत होने के साथ-ही-साथ न केवल भारतवर्ष अपितु वैश्विक क्षितिज पर मील का पत्थर बन गयी। आज सम्पूर्ण विश्व में किसी भी ग्रन्थ का दो हजार से अधिक भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सका है। किन्तु तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका दो हजार से अधिक लगभग 2025 भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। यह है गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरतिमानस एवं उनके प्रभु श्रीराम की लोकप्रियता, विशिष्टता एंव अलौकिकता का प्रथम निदर्शन।

तुलसी के राम शीर्षक से ही यह बात ध्वनित होती है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रभु श्रीराम, अन्य कवियों के नायक श्रीराम से विलक्षण एवं विशिष्ट हैं। किन्तु इस तथ्य की पुष्टि के लिए हमें गोस्वामी जी के काव्य के कतिपय उन बिन्दुओं एवं दृष्टियों को रेखांकित करना अत्यावश्यक होगा, जिससे उनकी यह विशिष्टता परिलक्षित होती है। एतदर्थ गोस्वामी तुलसीदास जी की दार्शनिक दृष्टि, भक्ति दृष्टि, सामाजिक दृष्टि एवं समन्वयात्मक दृष्टि पर यदि दृष्टिपात करें तो उनके प्रभु श्रीराम की विशिष्टता, अनुपमेयता एवं अलौकिकता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है।

इस परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी तुलसीदास जी की सर्वप्रथम दार्शनिक दृष्टि पर विचार करें तो हम देखते हैं कि जहाँ कबीर आदि कवियों ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को ही मात्र स्वीकार किया, रामानुज ने सगुण रूप स्वीकार किया तथा शंकराचार्य जी ने निर्गुण मायामय है, ऐसा स्वीकार किया वहीं गोस्वामी जी ने प्रभु श्रीराम के माध्यम से ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया [1]

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगति प्रेमबस सगुन सो होई।।

पुनः गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं जो निर्गुण है वह सगुण कैसे हो सकता है [2]

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे।।

व्याकरणात्मक दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो शंकराचार्य जी के अनुसार निर्गुण शब्द की व्याख्या **'निर्गताः गुणा यस्मात् स निर्गुणः'** तथा रामानुजाचार्य के अनुसार **'निर्गताः हेय गुणाः यस्मात् स निर्गुणः'** होगा। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी की व्याख्या देखें कि उनके अनुसार **निर्लीनाः गुणाः यस्मिन् स निर्गुणः'** ऐसा करते हैं, अर्थात जिसमें सद्गुण पुंजीभूत रूप में निर्लीन हों, विलीन हों समाहित हों, ऐसे हैं गोस्वामी जी के प्रभु श्रीराम।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शंकराचार्य जहाँ अभेदवाद या अद्वैतवाद के पोषक हैं वहीं गोस्वामीजी विशिष्टाद्वैत के समर्थक हैं तथा वे सीताराम विषयक विशिष्टाद्वैत को मानते हैं। गोस्वामी जी मानते हैं [3]

जौं सबके रह ज्ञान एकरस, ईश्वर जीवहिं भेद कहुह कस।।
माया वस्य जीव अभिमानी, ईश बस्य माया गुन खानी।
परवश जीव स्ववश भगवन्ता, जीव अनेक एक श्रीकंता।।

यह है गोस्वामी तुलसीदास जी की दार्शनिक दृष्टि जिसके द्वारा उनके प्रभु श्रीराम अन्य कवियों से सर्वथा अलौकिक एवं अनुपम हैं।

गोस्वामी जी की भक्ति दृष्टि भी विलक्षण है जो उनके भगवान प्रभु श्रीराम को अन्य कवियों के नायक राम से अलौकिक सिद्ध करती है। गोस्वामीजी के राम भगवान हैं [4]

जेहि मह आदि मध्य अवसाना, प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

अन्य लोगों के भगवान मात्र विचार या वृत्ति के विषय हैं, अर्थात उनके भगवान मात्र विचार या वृत्तिपथ में ही आते हैं। किन्तु गोस्वामी जी के भगवान वृत्ति एवं प्रवृत्ति दोनों में हैं। इसीलिए वे श्रीराम को जहाँ एक ओर भगवान के रूप में देखते हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें हिन्दुत्व के स्वाभिमान के रूप में भी देखते हैं।

बालकाण्ड की एक ही चौपाई के अन्तगर्त उनके प्रभु श्रीराम वृत्ति और प्रवृत्ति दोनों रूपों में देखे जा सकते हैं। एक ओर स्वाभिमान के रूप में तथा एक ओर भगवान के रूप में [5]

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक, चरन कमल बंदउँ सब लायक।
राजिव नयन धरे धनु सायक, भगत विपति भंजन सुखदायक।।

यहाँ 'राजिव नयन धरे धनु सायक' से जहाँ प्रभु श्रीराम का स्वाभिमान दिखायी पड़ता है वहीं दूसरे चरण में 'भगत विपति भंजन सुखदायक' से उनका भगवत् स्वरूप-भगवान का रूप भी परिलक्षित होता है।

भक्ति दृष्टि के बाद गोस्वामी जी की सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि का भी विहंगमावलोकन प्रस्तुत शीर्षक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अन्य कवियों के नायक राम, उनके राज्य के मात्र नायक बनकर ही रह जाते हैं, किन्तु गोस्वामी जी के प्रभु श्रीराम सर्वांगीण व्यक्तित्व के धनी हैं। वे समस्त गुणों के समुच्चय हैं। पुंजीभूत स्वरूप हैं। पाँचों देवताओं की जो महाशक्तियाँ हैं वे सब उनमें समाहित हैं, अन्तर्निहित हैं। उनमें सूर्य का सूर्यत्व, शक्ति या दुर्गा का महाशक्तित्व, विष्णु जी का वैष्णवत्व, गणेश जी का महागणेशत्व एवं शिव का महाशिवतत्व पुंजीभूत रूप में विद्यमान है।

बालकाण्ड के दोहे में स्पष्ट रूप से इसका निर्दशन किया जा सकता है [6]

कुंजर मनि कंठाकलित, उरन्हि तुलसिका माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि, बल निधि बाहु विसाल।।

इस स्थल पर 'कुंजर मनि कंठा कलित' से श्री गणेशजी, 'उरन्हि तुलसिकामाल' से विष्णुजी, 'वृषभ कंध' से शंकरजी, 'केहरिठवनि' से दुर्गाजी तथा 'बलनिधि बाहु विसाल' से सूर्य देव जी का महाशक्तित्व एक साथ दर्शनीय है। ऐसे विलक्षण गुणों एवं शक्तियों के मूर्तिमान रूप हैं, तुलसी के श्रीराम।

समाज की प्रत्येक विधा, माता-पिता एवं गुरुजनों के लोकरंजक तो गोस्वामी जी के प्रभु श्रीराम हैं ही, साथ ही वे अत्याचारियों को दण्ड देना भी अच्छी तरह जानते हैं। वे क्षमा की परिभाषा को वैदिक संस्कृति के संरक्षण में तो उपयोग करते हैं, किन्तु जब उन्हें लगने लगता है कि क्षमा वैदिक संस्कृति के लिए अहितकर सिद्ध हो रही है, तो क्षमावृत्ति के प्राप्ति होने पर भी गोस्वामी जी के प्रभु श्रीराम क्षमा को छोड़कर अत्याचारी या उद्दण्ड को दण्ड देने के लिए उद्यत हो जाते हैं। यही कारण है समुद्र की उद्दण्डता पर उनका क्रोध प्रदर्शित ही हो जाता है [7]

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीत।।

तुलसी के श्रीराम, लोकरंजन के पक्षधर होने पर भी दीन-हीनों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हैं। सुग्रीव का दुःख सुनकर वे उद्वेलित हो उठते हैं [8]

सुनि सेवक दुःख दीन दयाला, फरकि उठी दोउ भुजा विसाला।

वे अन्याय से जूझना भी जानते हैं तथा अन्याय से जूझने वालों का प्रबल पक्ष भी लेते हैं। कदाचित् इसीलिए प्रभु घायल एवं मरणासन्न गीधराज जटायु को पिता स्वरूप स्वीकार करते हुए पिता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

गोस्वामी तुलसीदास के श्रीराम ऊँच-नीच में कोई भेद-भाव नहीं रखते विशेषतः राष्ट्रीय हितों के सन्दर्भ में वे किसी से कोई समझौता नहीं करते। वे अंगद से कहते हैं [9]

काजु हमार तासु हित होई, रिपु सन करेहु बतकही सोई।

गोस्वामी तुलसी के श्रीराम अपनी जन्मभूमि के प्रति बहुत ममतावान हैं [10]

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि, उत्तर दिशि बह सरजू पावनि।

वन जाते समय भी प्रभु श्रीराम अयोध्या को प्रणाम करते हैं [11]

चले हृदय अवधहिं सिरू नाई।

किंवा, वनवास काल में अयोध्या को स्मरण कर-करके प्रभु रोने लगते हैं [12]

जब-जब राम अवध सुधि करहीं, तब-तब वारि विलोचनि भरहीं।

यही नहीं वनवास से प्रत्यागमन के समय भी सीताजी के साथ वे अयोध्या को प्रणाम करते हैं [13]

सीता साहित अवध कहुँ, कीन्ह कृपालु प्रनाम।

किम्बहुना, तुलसी के राम भगवान के साथ-साथ लोकोत्तर महामानव भी हैं। वे हमारे भव्य भारत की अस्मिता, स्वाभिमान, और संस्कृति के प्रतीक भी हैं। यदि राम शब्द में र का अर्थ राष्ट्र तथा म का अर्थ मंगल से करें तो यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है। स्वयं गोस्वामी जी के शब्दों में [14]

जो जगदीश तो अति भलो, जो महीश बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भर, राम चरन अनुराग।।

गोस्वामीजी की समन्वयात्मक दृष्टि भी विलक्षण है। उन्होंने समस्त संसार को ही राममय माना है [15]

सीय राम मय सब जग जानी, करहु प्रनाम जोरि कर जुगपानी।

उन्होंने अपने प्रभु श्रीराम के शैव एवं वैष्णव दोनों स्वरूपों का समन्वय किया है। इसीलिए इनके श्रीराम, शिवजी के आराध्य हैं [16]

तुम्ह पुनि राम नाम दिन राती, सादर जपहु अनंग अराती।।

इसके साथ ही भगवान श्रीराम ने रामेश्वरम् की पूजा की। देखा जाय तो नारायण का 'रा' और महेश्वर का 'म' ही मिलकर राम बनते हैं। इसीलिए राम की वरयात्रा में गोस्वामी जी ने शिव और विष्णु दोनों परस्पर विरोधी सत्ताओं को उपस्थित किया तथा दोनों ने ही गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीराम का अभिनंदन किया [17]

संकरु राम रूप अनुरागे, नयन पंचदश अति प्रिय लागे।
हरि हित सहित राम जब जोहे, राम समेत रमापति मोहे।।

गोस्वामीजी ने प्रभु श्रीराम के माध्यम से उत्तर और दक्षिण का अद्भुत समन्वय कराकर इस अन्तर को समाप्त करते हुए राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का साक्षात् दृष्टान्त भी प्रस्तुत किया है दक्षिण में जन्मे हनुमान को एकमात्र अभिन्न बनाकर, सेतुबन्ध रामेश्वर की पूजा करके तथा विभीषण से मित्रता करके उत्तर एवं दक्षिण में समन्वय स्थापित किया।

आज अवर्ण और सवर्ण के बीच गहरी खाई पैदा होती जा रही है, लोगों को गोस्वामी जी के प्रभु श्रीराम के उन आदर्शों पर पुनः चिन्तन एवं अमल करना होगा, जहाँ प्रभु ने तथाकथित अवर्णों केवट और कोल-किरातों को हृदय से लगाकर प्राणातिप्रिय रूप में अंगीकार किया। वे केवट से कहते हैं [18]

तुम मम सखा भरत सम भ्राता।

इसी प्रकार कोल-किरातों के प्रति भी, उनके भाव दर्शनीय हैं [19]

वचन किरातन के सुनत्, जिमि पितु बालक बैन।

अंततः गोस्वामी तुलसीदास के प्रभु श्रीराम की वंदना करते हुए पूज्यपाद जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य जी के शब्दों में यही भावांजलि प्रस्तुत करेंगे

कोटि-कोटि राम अभिराम घनश्याम तन।
परम कृपाल नर लोक के ललाम हैं।।
सकल समन्वय महोदधि कृपानिधान।
पतितों के पावन समस्त गुणधाम हैं।
भारतीय संस्कृति के कुशल-कलाधर से।
विबुध निकर पूज्य ब्रह्म पूर्णकाम हैं।
मर्यादा पुरुषोत्तम मैथिली मनोरम वे।
मानवता सर्वस्व 'तुलसी के राम' हैं।

संदर्भ

1. श्रीरामचरितमानस 1/116/1,2
2. वही, 1/116/3
3. वही, 7/78/5,6,7

4. वही, 7/61/6
5. वही, 1/18/9,10
6. वही, 1/243
7. वही, 5/57
8. वही, 4/6/14
9. वही, 6/17/8
10. वही, 7/4/5
11. वही, 2/83/2
12. वही, 2/141/3
13. वही, 6/120क
14. वही,
15. वही, 1/8/2
16. वही, 1/108/7
17. वही, 1/317/3,4
18. वही, 7/20/3
19. वही, 2/136

2

मानस का सांस्कृतिक अवदान

मानस का सांस्कृतिक अवदान-शीर्षक के अन्तर्गत दो प्रमुख शब्दों में ही सम्पूर्ण सार निहित है। ये दोनों शब्द 'मानस' और 'सांस्कृतिक' हैं। इन दोनों शब्दों का शाब्दिक अभिप्राय ही शीर्षक को पूर्णरूपेण व्याख्यायित करने में समर्थ है। इनमें 'मानस' का तात्पर्य है **'मनसे हितम् इति मानसम्'** अर्थात् मन के लिए जो हित करता है वह मानस है। मन होता है मानव के पास। अतः मानव का जो हित करता है वह मानस है। इसी प्रकार रामचरितमानस का अर्थ करना चाहें तो कह सकते हैं कि रामचरित के माध्यम से जो मानव का हित-कल्याण किया जाय वह श्रीरामचरितमानस है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मानस का अभिप्राय 'मानव' से है।

शीर्षक के दूसरे शब्द सांस्कृतिक का तात्पर्य है संस्कृति से सम्बन्धित। अतः मानस के सांस्कृतिक अवदान का अर्थ है मानव संस्कृति से सम्बन्धित या 'मानव संस्कृति'।

इस स्थल पर उक्त विषय के स्पष्ट बोध के लिए 'संस्कृति' शब्द की भी स्पष्ट व्याख्या परमावश्यक है। सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु एवं क्तिन् प्रत्यय (सम + कृ + क्तिन्) से निष्पन्न सांस्कृतिक शब्द को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है **कि-सम् परिभ्राम करोतौ भूषणे, समवाये च संस्कृतिः।** अर्थात् जो क्रिया पूर्ण होते हुए भी करने वाले को सजाती है तथा मिलाती है, संस्कृति कहलाती है। दूसरे शब्दों में संस्कृति को संस्कारों का समुच्चय भी कहा जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि संस्कार मानव में ही होते हैं देवताओं में नहीं। संस्कार मानव को ही सुसंस्कृत, सुसज्जित एवं श्रेष्ठ बनाने के लिए होते हैं। देवता तो इससे ऊपर होते हैं, उन्हें सुसंस्कृत करने की आवश्यकता तो होती नहीं है। अतः ये संस्कार मानवों के लिए ही हैं। इस प्रकार उक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि जो संस्कार पूर्ण होते

हुए भी मानव को सजाते हैं अर्थात् मानव को मानव या श्रेष्ठ मानव बनाते हैं तथा एक मानव से दूसरे मानव का समन्वय स्थापित करते हैं, मिलाते हैं उनके समुच्चय को 'मानव संस्कृति' कहा जाता है। यही 'मानव संस्कृति' ही मानस का सांस्कृतिक अवदान है, जिसकी सविस्तार व्याख्या इस प्रकार है

इस सृष्टि की विविधता के बीच देव, मनुज और दनुज ये तीन मिलते-जुलते प्राणी हैं। इनमें जो भेद है, वह गुण और कर्म अथवा आचार एवं विचार का है। सामाजिक मान्यता के अनुसार असुर से मानव तथा मानव से देवता श्रेष्ठ माने जाते हैं। परन्तु इस संबंध में मानस का दृष्टिकोण कुछ पृथक् ही है। सैद्धान्तिक रूप से देवत्व का वर्चस्व स्वीकार करते हुए भी श्रीरामचरितमानस ने व्यवहार क्षेत्र में मानवत्व को अधिक महत्व दिया है।[1] **ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती।।** जैसी उक्तियों के द्वारा मानस ने देवशक्ति की श्रेष्ठता पर जैसे प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इसी प्रकार आसुरी शक्ति को अत्याचारी, अन्यायी, अधम, नीच, जनशोषक तथा असामाजिक तत्त्व मानकर उसका पदे-पदे विरोध किया। दूसरी ओर **बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा[2]।।** कहकर मानव एवं मानवत्व को श्रेष्ठता के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ करा दिया है।

'नहिं मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' के अनुसार विधाता के रचना-विधान में मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसी बात को मानसकार भी स्पष्ट कहते हैं[3] **नर तन सम नहिं कवनिउ देहीं। जीव चराचर जाचत जेहीं।।** इस सृष्टि प्रपञ्च में जितने जीव हैं, सबका काम्य मानव जीवन है। इसलिए कि मनुष्येत्तर जीव में वह क्षमता नहीं होती जिससे विशेषतः वह कुछ से कुछ कर सके और जैसा चाहे वैसा कर सके। चिन्तन और कार्य सम्पादन की अप्रतिम क्षमता केवल मनुष्य को प्राप्त है। यही कारण है कि गोस्वामी जी ने मानस में इसी मानव जीवन को सुसंस्कारिक, सुसज्जित एवं आदर्शमय बनाने के लिए श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं आदर्श मानव के रूप में चित्रित करके मानव संस्कृति को प्रतिष्ठित करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इसी मानव संस्कृति की प्रतिष्ठापना के लिए मानसकार ने देवत्व को मानवत्व के धरातल पर लाकर असुरत्व को भी समाप्त करके मानवत्व के ही रूप में संस्कारित करते हुए मानव संस्कृति का उद्घोष किया है।

गोस्वामीजी संस्कृति के श्रेष्ठ उद्घाटक, संरक्षक एवं संचालक हैं। मनुष्य का मनुष्य के साथ ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसको हमारे लिए उन्होंने आदर्श रूप में स्थापित न किया हो। एतदर्थ गोस्वामीजी की लेखनी ने व्यक्ति, परिवार समाज एवं राष्ट्र आदि सभी का संस्कारिक एवं मर्यादित चित्र उकेरने का अत्यन्त सफल प्रयास किया है।

समष्टिभूत मानव संस्कृति की व्यष्टि 'मानव' या 'व्यक्ति' है। सम्पूर्ण मानव संस्कृति के लिए मानव या एक-एक व्यक्ति का संस्कारिक अथवा चरित्रवान् होना परमावश्यक है। आदर्श चरित्र सर्जन की दृष्टि से मानस निःसन्देह एक अद्वितीय श्रेष्ठ ग्रंथ है जो उत्तम चरित्रवान् नागरिकों के निर्माण में योगदान करता है। व्यक्ति के अन्तःकरण एवं बाह्याचार-दोनों ही पक्षों को उत्कृष्ट बनाने के दृष्टान्त मानस में सुलभ हैं। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, दिनचर्या, विद्या-व्यसन, सुरुचिपूर्ण व्यवस्था, विवेकमय कर्मकौशल तथा लोक एवं शास्त्र दोनों का व्यावहारिक समन्वय, जो व्यक्ति के बाह्याचार के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है, मानस में सर्वत्र दर्शनीय है। इसी प्रकार मानव के अन्तःकरण के भी जितने सद्गुण एवं सद्भाव हैं, यथा त्याग, क्षमा, शील, धर्मपरायणता, निर्भीकता, विनम्रता, सेवा, संयम एवं साहस आदि सभी मानस में दृष्टिगोचर होते हैं। दूसरे शब्दों में, मानव संस्कृति के इन्हीं पक्षों को उजागर करने के लिए ही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता आदि विभिन्न सत्पात्रों के माध्यम से ही आदर्श मानव या व्यक्ति के स्वरूप को गोस्वामीजी ने निरूपित किया है।

मानव, जन्म लेते ही परिवार एवं समाज के विभिन्न संबंधों से संबंधित हो जाता है। सम्पूर्ण जीवन भर माता-पिता, पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी, सास-बहू, आदि विविध संबंधों की कसौटी पर खरे उतरने के लिए तथा मर्यादित जीवन-यापन करने के लिए उसे शिक्षा, संस्कार एवं सद्गुणों का परिपालन करना होता है। मानव के इन संबंधों को स्वस्थ, सुव्यवस्थित एवं मर्यादित बनाए रखने के लिए मानसकार ने अपने ग्रंथ में जिन संस्कारों और विश्वासों की व्यञ्जना करायी है, उनमें अध्यात्मपरक जीवन दृष्टि के आधार पर एक ऐसे स्वस्थ, सुन्दर ज्ञानमय, प्रेमस्निग्ध और कर्मनिष्ठ परिवार एवं समाज की व्यवस्था झलकती है जो **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** के आदर्श की ओर उन्मुख है। इसमें साधारण नर-नारियों के आचरण करने योग्य पारिवारिक धर्म, सामाजिक धर्म और पूर्ण मानवतावाद के अनुकूल अन्यान्य आदर्शों को सुचारू ढंग से प्रतिपादित किया गया है। आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक एवं आदर्श सखा आदि सभी मानवीय संबधों के सम्पूर्ण आदर्शों का रामचरितमानस में प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

सामाजिक प्ररिप्रेक्ष्य में भी मानसकार ने मानवीय पक्ष का समर्थन एवं प्रतिपादन किया है। कल्याणकामी समाज के लिए मानवीय संवदेना, अनुशासन एवं मर्यादा की आवश्यकता होती है, किन्तु समग्र मानवता के निर्माण के लिए इससे

भी अधिक भावात्मक एकता की आवश्यकता है जो सुदूर अंचलों में बसे विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक सूत्र में बाँधती है, एक दूसरे को सुख-दुःख और आशा-निराशा के क्षणों में अनुभूति की समान भागीदारी बनाती है। मानवता की सबसे बड़ी पहचान यह है कि सहानुभुति सदैव दलितों, शोषितों, समाज के पिछड़े एवं दुर्बल वर्गों तथा व्यक्तियों के पक्ष में हो। तुलसी के राम ने निषाद, शबरी, गीध, किरात तथा आदिम वर्गों के जनों को गले लगाया एवं सुग्रीव और विभीषण जैसे संत्रस्त लोगों का कष्ट हर लिया। इस प्रकार सामाजिक विषमता को दूर करना, समरसता को स्थापित करना तथा मानवता को उजागर करना ही मानसकार का प्रमुख उद्देश्य एवं अवदान है।

मानस का सांस्कृतिक अवदान मानव संस्कृति की आधार भित्ति है समन्वय 'सम' और 'अन्वय' दो शब्दों के योग से निष्पन्न है जिसमें सम का अर्थ है 'संस्कारपूर्ण' और अन्वय का अर्थ है 'मिलाना' या 'जोड़ना'। किन्हीं दो पदार्थों को मिलाने या जोड़ने से एक तीसरा परिणाम प्राप्त होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्राप्त परिणाम गुणात्मक ही हो, ऋणात्मक भी हो सकता है। इसलिए जहाँ दो पदार्थों का अन्वय गुणात्मक परिणाम देता है, अर्थात् संस्कारपूर्ण गुणात्मक परिणाम होता है उसे समन्वय कहते हैं। मानस के सांस्कृतिक अवदान में यही समन्वयात्मक सूत्र निहित है जो मानव संस्कृति को उत्कृष्टता की कोटि में पहुँचाता है। मानव संस्कृति अगाध महासागर सदृश है जिसके अन्तर्गत देव-दनुज, नर-वानर, पशु-पक्षी एवं ऊँच-नीच आदि सभी का समन्वय है। मानसकार ने श्रीराम को सेतु कहा है। सेतु का कार्य है मिलाना जोड़ना या समन्वय।

गोस्वामीजी ने इसी आदर्श सेतु के माध्यम से उक्त सभी संस्कृतियों को मानव संस्कृति में समन्वित करा दिया है। मानव संस्कृति की महत्ता को स्थापित करने के लिए ही स्वयं भगवान महाविष्णु एवं भगवती महालक्ष्मी ने श्रीराम और सीता के रूप में अवतार लिया। अन्य सभी देवताओं ने अंशावतार ग्रहण कर नर-वानर आदि विविध रूपों में मानव संस्कृति में योगदान दिया। भगवान शंकर और माँ पार्वती ने मानव संस्कृति के मूर्तमान स्वरूप श्रीराम की कथा का गायन एवं संपादन किया। काकभुशुण्डि और गरुड़ जैसे पक्षियों ने मानवता के प्रतीक राम की कथा का वाचन एवं श्रवण किया। गीध जटायु एवं संपाती ने अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य से सहयोग किया। भक्तप्रवर हनुमान एवं मित्र सुग्रीव जैसे वानरों ने विविध भाँति सेवा तथा सहायता की। किंवा, असुर कुलोत्पन्न विभीषण ने तो मानवता एवं मानव संस्कृति की रक्षा के लिए इसके विरोधी तथा सहोदर भ्राता राक्षसराज रावण का साथ तक छोड़

दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुर-असुर, पशु-पक्षी, वानर भालू एवं अन्य चराचर सभी मानवी संस्कृति में समन्वित होकर किसी न किसी रूप में इसके उत्कर्ष, संवर्धन एवं प्रतिस्थापन में ही संलग्न हैं।

मानस को जिस किसी भी कोने से झाँकने का प्रयास करें सर्वत्र गोस्वामीजी की मानव-संस्कृति ही दृष्टिगोरचर होती है। किम्बहुना, मानवता का अपमान मानसकार एवं उनके नायक को कदापि सह्य नहीं है। मानवता या मानव संस्कृति का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार से विरोध एवं अपमान करने वाले को दंडित होना ही पड़ा है। चाहे वह देव हो, दनुज हो, वानर हो या अन्य कोई। सती ने श्रीराम का अपमान किया उन्हें दण्डित होना पड़ा। राक्षसराज रावण प्रभृति अन्यान्य रासक्षों को काल के गाल में समाहित होना पड़ा। मानव संस्कृति को लांछित करने वाले वानरराज बालि को श्रीराम के हाथों मृत्यु मुख में जाना पड़ा। यह मानस का सांस्कृतिक अवदान-मानव संस्कृति का आदर्श स्वरूप है।

मानव संस्कृति की इस समन्वयात्मक दृष्टि से उत्तर-दक्षिण की धुरी को मिलाकर समग्र देश को एकता के सूत्र में पिरोया। श्रीराम ने रामेश्वरम् की स्थापना द्वारा न केवल शैव और वैष्णवों को आपस में मिलाया अपितु इनमें साम्प्रदायिक और धार्मिक सौहार्द्र भी स्थापित किया। राम ने अयोध्या से चलकर भारतवर्ष के सुदूर विभिन्न प्रान्तों, धर्मों एवं स्थानों के लोगों को आत्मसात करते हुए उत्तर-दक्षिण की दूरी को समाप्त किया तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुदृढ़ बनाया। समुद्र पर सेतु बनाकर लंका में आसुरी शक्ति के विनाश के साथ-साथ मानव संस्कृति का उद्घोष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी किया।

इस प्रकार मानव संस्कृति की सम्पूर्ण सर्वश्रेष्ठ भाव ऋृद्धियों को समन्वित होने के कारण ही मानस को राष्ट्रीय महाकाव्य और उससे आगे बढ़कर विश्वकाव्य रूप में स्वीकार किया जाता है। श्रीराम के मुख से **'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'**[4] कहलाकर मानसकार ने सम्पूर्ण विश्व तथा समग्र मानवता को एक ही सिद्ध करने की चेष्टा की है। श्रीराचरितमानसस्व एवं पर के मध्य की दूरी समाप्त कर, अपने आदर्शों द्वारा वैश्विक क्षितिज पर सबकी हित कामना की है[5] **सुरसरि सम सब कहँ हित होई।** इस प्रकार मानस में मानवीय संस्कृति के प्रमुख मूल तत्त्वों **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** एवं **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'** के उद्घोष द्वारा मानव संस्कृति को ही स्थापित किया गया।

अन्ततः, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि श्रीरामचरितमानस विश्व साहित्य का एक ऐसा ग्रंथरत्न है जो आसुरी संपदा का संहार, अमानवीयता का विरोध

एवं सामाजिक विषमता को अस्वीकार करता है तथा सक्रिय, संस्कारिक एवं आदर्श मानवतावाद या मानव संस्कृति का आश्रयदाता है। मानस, मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण महाकाव्य है जो मानव को अच्छा प्राणी बनने के लिए प्रेरित करता है। यही कारण है कि, इसका महत्व राष्ट्र सीमाओं में न बँधकर विश्व के विराट् रूप को ग्रहण करता है। विश्व में श्रीराम से बड़ा कोई आदर्श मानव नहीं है और समग्र मानव जाति को एक सूत्र में बाँधकर मानव संस्कृति का उद्घोष करने वाला श्रीरामचरितमानस से बड़ा कोई ग्रंथ नहीं है।

संदर्भ

1. श्रीरामचरितमानस अयो. दो.-12, चौ. 6
2. मानस, उ. दो.-43, चौ. 07
3. मानस, उ. दो.-121, चौ. 09
4. मानस, उ. दो.-86, चौ. 04
5. मानस, बाल. दो.-13, चौ. 09

3

रामकथा विषयक आचार्य क्षेमेन्द्र की मौलिक उद्भावनाएँ

सरस्वती की लीला विलास भूमि काश्मीर में संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले अनेक विद्वद्रत्न हुए हैं। शास्त्रीय विचार विमर्श से लेकर सरस तथा सुमधुर साहित्य तक प्रत्येक प्रकार की रचनाओं के लिए संस्कृति भाषा और वाङ्मय का इतिहास इस प्रदेश का ऋणी है। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में इसी विद्वत्प्रसू शारद देश में क्षेमेन्द्र नामक सर्वतोन्मुखी प्रतिभावान रत्न का अभ्युदय हुआ जिसने संस्कृत साहित्य के विविध क्षेत्रों को अपनी लेखनी से समृद्ध कर संस्कृत वाङ्मय को अक्षुण्ण बना दिया।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने जहाँ एक तरफ औचित्यविचारचर्चादि शास्त्रीय ग्रन्थों की सर्जना करके आचार्यत्व की पदवी धारण की तथा औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुए, वहीं दूसरी तरफ विविध मौलिक कृतियों के साथ-साथ रामायण और महाभारत जैसे उपजीव्य ग्रन्थों को सर्वजनग्राह्य एवं सुलभ बनाने के उद्देश्य से रामायणमञ्जरी और भारमतञ्जरी प्रभृति महाकाव्यों की सर्जना करके 'कवीन्द्र' एवं 'व्यास' की उपाधि भी प्राप्त की।

संस्कृत रामकथा वाङ्मय में क्षेमेन्द्र विरचित रामायण मञ्जरी का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं योगदान है। यद्यपि रामायणमञ्जरी वाल्मीकि रामायण का अति संक्षिप्त रूप है जिसमें कवि क्षेमेन्द्र ने वाल्मीकीय कथा का ही अक्षरशः अनुकरण किया है, तथापि ग्रन्थ के आद्योपान्त अनुशीलन से पता चलता है कि इसमें कवि ने यत्र-तत्र किंचित् सूक्ष्म परिवर्तन भी किया है जो वाल्मीकि रामायण से सर्वथा पृथक् एवं नवीन है तथा जिससे कवि की रामकथा विषयक मौलिकता का परिचय भी प्राप्त होता है। रामायण मञ्जरी में वर्णित क्षेमेन्द्र की मौलिकता का विवेचन अधोलिखित है।

सर्वप्रथम ग्रन्थ की **कथानक व्यवस्था** में ही कवि की मौलिकता का दर्शन होता है। सम्पूर्ण रामायणमञ्जरी का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने अन्य रामायण गन्थों की अपेक्षा रामायणमञ्जरी की कथानक व्यवस्था में बहुत ही रोचक एवं मौलिक परिवर्तन किया है। यद्यपि कि कवि ने ग्रन्थ के 6400 श्लोकों को मुख्य रूप से बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, आरण्यपर्व, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड प्रभृति सात काण्डों में विभाजित किया है, किन्तु काण्ड व्यवस्था के इस बाह्यस्वरूप के अन्तर्गत कवि द्वारा किए गये कुछ परिवर्तन ध्यातव्य हैं। यथा ग्रंथकार ने ग्रंथ का शुभारम्भ "काश्मीरक महाकवि क्षेमेन्द्रविरचिता रामायणमञ्जरी...बालकाण्डम्" ऐसा लिखते हुए मंगलाचरण के प्रस्तुत प्रथम श्लोक से किया है [1]

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना।।

किन्तु ग्रंथ के अग्रिम अवलोकन से पता चलता है कि कवि ने इस बालकाण्ड की समाप्ति का कहीं उल्लेख नहीं किया है, अपितु दशरथविपत्तिः के सन्दर्भ में 987 श्लोक संख्या तक पहुँचने पर "इति क्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे समाप्तोऽयमयोध्या-काण्डः" ऐसा लिखा प्राप्त होता है।

इस स्थल पर ध्यातव्य है कि ग्रंथकार जहाँ एक ओर बालकाण्ड के प्रारम्भ का उल्लेख कर उसकी समाप्ति का उल्लेख नहीं करते, वहीं दूसरी ओर अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख करने से पूर्व किसी भी स्थल पर उसके प्रारम्भ का उल्लेख नहीं करते हैं। अपितु इन दोनों काण्डों को संयुक्त रूप में देकर कवि ने बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड के विभाजन को सन्दिग्ध बना दिया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि रामायणमञ्जरी में बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड की इस व्यवस्था के अन्तर्गत कथानक के विभाजन को किस सीमा तक बाँधा जाय? इस समस्या के समाधान हेतु अन्य रामायण ग्रंथों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। अतः वाल्मीकि रामायण को ही ध्यान में रखते हुए रामायणमञ्जरी की इस काण्ड व्यवस्था पर विचार करें तो सीता विवाह के परश्चात् अयोध्याप्रत्यागनम् तक ही बालकाण्ड की समाप्ति, तदन्तर अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ कर अरण्यपर्व के अत्रिदर्शनम् तक इसकी समाप्ति होनी चाहिए। परन्तु रामायणमञ्जरी में कवि ने ऐसा न करके तथा बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप देकर अपनी एक मौलिक व्यवस्था का ही परिचय दिया है।

यहाँ पुनः एक प्रश्न उठता है कि बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करने के पीछे कवि का क्या मन्तव्य है? इसके समाधान हेतु सम्पूर्ण

रामायणमञ्जरी की काण्डव्यवस्था का अवलोकन करना पड़ता है, जिससे विदित होता है कि ग्रंथकार संभवतः घटनास्थल के आधार पर काण्डों का विभाजन करना चाहते थे। उदाहरणार्थ आरण्य में घटने वाली घटनाओं को किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत और युद्ध सम्बन्धी घटना को युद्धकाण्ड के अन्तर्गत रखा है। कवि ने इसी दृष्टिकोण के आधार पर अयोध्यापुरी में घटने वाली समस्त घटना रामजन्म से लेकर उनके वनगमन तथा दशरथमरण तक (बालकाण्ड + अयोध्याकाण्ड) की संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया है। पाठकों के अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से बालकाण्ड के प्रारम्भ एवं अयोध्याकाण्ड की समाप्ति का उल्लेख करके कवि अपने मन्तव्य को दर्शा देता है कि अयोध्याकाण्ड में घटने वाली समस्त घटनाएँ अमुक स्थान से प्रारम्भ होकर अमुक स्थान पर समाप्त हो जाती है।

इसके पश्चात् दशरथ-संस्कार से प्रारम्भ कर वसंत वर्णन तक 1158 श्लोकों में संग्रथित अरण्यपर्व का वर्णन है। इस पर्व के अन्तर्गत भी कथानक व्यवस्था सम्बन्धी कवि की एक मौलिकता दर्शनीय है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित वे घटनाएँ जो क्षेमेन्द्र की व्यवस्था के अनुसार अयोध्या में न घटित होकर आरण्य में घटित होती हैं उसको उन्होंने आरण्यपर्व के अन्तर्गत रखा है। फिर भी उस प्रसंग को अलग रखने के लिए तथा भरत से सम्बन्धित होने के भी कारण कवि क्षेमेन्द्र ने आरण्यपर्व के ही अन्तर्गत 328 श्लोकों वाले भरतपर्व की कल्पना की है। इसी स्थान पर एक विचारणीय तथ्य और भी है कि, अन्य रामकथा ग्रन्थों में जिस काण्ड को प्रायः अरण्यकाण्ड से सम्बोधित किया गया है उसी को ग्रन्थकार ने रामायणमञ्जरी में आरण्यपर्व के नाम से अभिहित किया है। कवि का यह कृत्य उसकी मौलिकता से ही परिचय कराता है।

इसी प्रकार सुग्रीवसख्यम् से लेकर सुग्रीवाभिषेकः तक के 214 श्लोकों का वृतान्त किष्किन्धा पर्वत पर घटित होने के कारण किष्किन्धापर्व तथा प्रावृड्वर्णनम् से सागरलंघनम् के बीच की अधिकांश घटनाएं किष्किन्धापुरी से सम्बन्धित होने के कारण 573 श्लोकों वाले किष्किन्धाकाण्ड से अभिहित की गयी हैं। ग्रंथकार की यह व्यवस्था संभवतः कथानक को सरल, सुबोध एवं सुविधाजनक बनाने का ही एक प्रयास है।

इसके बाद सुन्दरकाण्ड के 705 श्लोक, युद्धकाण्ड के 1298 श्लोक तथा उत्तरकाण्ड के 1263 श्लोक वर्णित हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि कवि ने युद्धकाण्ड की समाप्ति तथा उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ से पूर्व कुछ प्रसंगों का अलग उल्लेख किया है। जिसके अन्तर्गत अन्तःपुरप्रलापः, रावणसत्क्रिया, विभीषणाभिषेकः, बह्निप्रवेशः,

महापुरुषस्तवः, लोकपाल-दर्शनम्, पुनराख्यायिकम्, भरतानन्दः, भरतसमागमः तथा रामाभिषेकः आदि घटनाएं समाहित हैं। रामायणमंजरी की कथानक व्यवस्था का यह परिवर्तन अन्यत्र रामकथा ग्रन्थों में सुलभ नहीं है।

अन्त में उत्तरकाण्ड की समाप्ति के पश्चात् कवि 9 श्लोकों के अन्तर्गत राम एवं वाल्मीकि की वन्दना तथा स्वदंशादि परिचय के साथ [2]

गुणागुणतया भान्ति येषु स्वस्तेषु विस्मया।
निर्गुणेषु गुणावेन ये वदन्ति जयन्ति ते।

प्रस्तुत श्लोक से ग्रन्थ की परिसन्तप्ति करता है इति क्षेमेन्द्रविरचिता रामायणमंजरी समाप्ता।

रामायणमंजरी की कथानक व्यवस्था के उपर्युक्त सन्दर्भ में एक उत्कण्ठा जागृत होनी स्वाभाविक है। वह यह कि आचार्य क्षेमेन्द्र को परम्परा के विरुद्ध इस नूतन विभाजन की प्रेरणा कहाँ से मिली? ऐसा प्रतीत होता है कि रामायणमंजरी का रचनाकार इस प्रसंग में निश्चय ही महाभारत से प्रभावित हुआ है। महाभारत का एक विभाजन तो आदि, सभा, उद्योग तथा वनपर्वादि 18 पर्वों के रूप में व्यवस्थित एवं सर्वजनवेद्य है। परन्तु उसका एक उपविभाजन भी है जो कि घटनाक्रम के अनुसार व्यवस्थित होकर उसी नाम से प्रख्यात है।

इस विशिष्ट विभाजन के अनुसार महाभारत 18 पर्व की बजाय कुल 100 पर्वों में विभक्त है। इन पर्वों की संज्ञाएं ही उस पर्व की कथा को स्पष्ट कर देती हैं। उदाहरणार्य अंशावतारपर्व में विभिन्न देव-दानवों का पाण्डव-कौरव वीरों के रूप में अवतरण, हिडिम्बपर्व में हिडिम्बवध आदि। वस्तुतः यह विभाजन लोकमानस के अधिक समीप है, क्योंकि सामान्य पाठक को पर्व नाम से ही पर्व कथा का बोध हो जाने के कारण स्वाध्याय रुचि की दृष्टि से बड़ी सुविधा होती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी तकनीकी तौर पर पारम्परिक काण्ड विभाजन को उतना महत्व नहीं दिया जितना कि पाठकाभिमत विभाजन पर। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घटनास्थल के अनुसार काण्ड की सीमा देना निश्चित किया।

रामयाणमंजरी के काण्डव्यवस्था की उपर्युक्त मौलिकताओं के अतिरिक्त ग्रन्थ के अन्तर्गत अन्य कई प्रसंगों में क्षेमेन्द्र की रामकथा विषयक मौलिकताएँ दर्शनीय हैं। वाल्मीकि रामायण प्रभृति प्रायः सभी रामकथा साहित्य में शबरी एक वृद्धा तपस्विनी के रूप में ही चित्रित है। किन्तु रामायणमञ्जरी में चित्रित शबरी रूप लावण्य युक्त तपस्विनी दृष्टिगोचर होती है [3]

स श्री सुतोपदिष्टेन वर्त्मना शनकैर्व्रजन्।
ददर्श सिद्धशबरीं मूर्तामिव तपः श्रियम्।।

स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण विभूषितकुचस्थलाम् ।।
मुखेन्दुश्रुतलावण्यबिन्दुमालांकितामिव ।।
ललाटफलकालीनपुण्यभस्मत्रिपुण्ड्रकाम् ।
शुभ्रां धवलसंपृक्तचन्द्रामिव विभावरीम् ।।
तां वल्कलवतीं दिव्यप्रभापटलपल्लवाम् ।
कल्पवल्लीमिवालोक्य क्लमं तत्याज राघवम् ।।

इस प्रकार रामायणमञ्जरी के उपर्युक्त रूपलावण्युक्त तपस्विनी का चित्रण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

युद्धकाण्ड (244-248) के अन्तर्गत सेतुबन्ध के प्रसंग में दशरथ और समुद्र की मित्रता का उल्लेख भी कवि की एक अन्य मौलिकता है। इस सन्दर्भ में समुद्र राम से कहता है : [4]

ततो जलनिधिः प्रीत्या काकुत्स्थमवदत्पुनः ।
राजा दशरथो नाम ममाभूद्दयितः सुहृत् ।।
पुरा देवासुरे युद्धे स चाहं च समागतौ ।
एकीभावमिवापन्नौ सुरसाहाय्यकर्मणि ।।
स निर्जितामररिपुर्वरं लेभे सुरेश्वरात् ।
कुलचूड़ामणेर्यस्य त्वज्जन्म प्रथमं फलम् ।।
अयोध्यायां गृहे तस्य मासमध्युषितः सुखम् ।
सौहार्द्रप्रीतिसर्वस्वैरूपचारैरकृत्रिमैः ।।
सोऽहं तव पितुर्मित्रं तत्स्नेहे निष्प्रतिक्रियः ।
मन्ये कृतघ्नमात्मानं स्पृष्टं पापशतैरपि ।।

इस प्रकार रामायणमञ्जरी के उपर्युत दोनों वर्णन अन्य किसी रामकथा साहित्य में नहीं मिलते। किन्तु इसके अतिरिक्त दो प्रसंग ऐसे हैं जो कि वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते। यथा रामायणमञ्जरी में कवि ने मंथरा के द्वारा कैकेयी के भड़काए जाने का कारण उल्लिखित किया है। इसके अनुसार राम के राज्याभिषेक का समाचार पाते ही मंथरा वज्राहत सी पीड़ित हो उठी, क्योंकि बचपन में राम द्वारा उसके ऊपर किये गये पादप्रहार का उसे स्मरण हो जाता है।[5]

शैशवे किल रामेण पुरा प्रणयकोपतः ।
चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा ।।

इसी कारण वह कुटिलाचारिणी मंथरा विष से भरी नागिन के समान अत्यन्त कुपित हो कैकेयी के मन्दिर में पहुँच करके उसे राम के विरुद्ध भड़काती है। इसके

अतिरिक्त केवल अग्निपुराण (आध्याय 518) में राम द्वारा मंथरा का उत्पीड़न ही कैकेयी के भड़काने तथा राम के वनवास का कारण बताया गया है।

इसी प्रकार युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में 'विभीषणमातृवाक्यम्[6] का प्रसङ्ग वर्णित है, जिसके अनुसार विभीषण की वृद्धा राक्षसी माँ विभीषण से अनुरोध करती है कि जाकर अपने भाई रावण को समझाए कि सीता को वापस दे दो, वरना रावण सहित लंका का शीघ्र ही विनाश हो जाएगा। भट्टिकाव्य[7] के अतिरिक्त अन्य किसी रामकथा ग्रन्थ में यह प्रसङ्ग नहीं वर्णित है। इसके अनुसार भी विभीषण की माँ उससे अनुरोध करती है कि वह जाकर भाई रावण को समझाये।

यद्यपि उपर्युक्त दोनों प्रसङ्ग अन्य स्थलों पर वर्णित होने के कारण सर्वथा मौलिक नहीं कहे जा सकते, किन्तु जिस रामायणमंजरी की सम्पूर्ण कथावस्तु वाल्मीकि रामायण पर आधारित हो उसमें वर्णित उक्त दोनों प्रसङ्गों के वाल्मीकि रामायण में सुलभ न होने के कारण उन्हें क्षेमेन्द्र की मौलिकता के रूप में माना जा सकता है।

उपर्युक्त मौलिकताओं के अतिरिक्त रामायणमंजरी में कवि द्वारा किए गये कुछ नामों में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। यथा अयोध्याकाण्ड[8] के अन्तर्गत अन्धमुनि पुत्र के रूप में यज्ञदत्त का उल्लेख, आरण्यपर्व[9] में पंपासर वर्णन के प्रसङ्ग में दमकर्णि ऋषि का उल्लेख, रावण की माँ के रूप में पुष्पोत्कटा[10] का उल्लेख तथा उत्तरकाण्ड में देववती[11] का नामोल्लेख आदि। प्रायः रामकथाओं में अंधमुनि पुत्र अथवा श्रवणकुमार का उल्लेख मिलता है, किन्तु रामायणमंजरी में उसका नाम यज्ञदत्त ही मिलता है। पंचाप्सर के प्रसङ्ग में प्रायः माण्डकर्णि का उल्लेख मिलता है, किन्तु रामायणमंजरी में दमकर्णि का उल्लेख मिलता है। रावण की माँ का नाम सर्वत्र कैकेसी ही उल्लिखित है, किन्तु रामायणमंजरी में पुष्पोत्कटा वर्णित है। इसी प्रकार जहाँ अन्य सभी रामकथाओं में उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत वेदवती प्रसङ्ग मिलता है वहीं रामायणमंजरी में परिवर्तन के साथ देववती प्रसङ्ग वर्णित है।

संदर्भ

1. रामा. मं., बाल का. श्लोक सं. 1
2. रामा. मं., उ. का. समाप्ति, श्लोक 9
3. रामा. मं., आ. पं. 1102-1105
4. रामा. मं., यु. कां. 244-248
5. रामा. मं., अयो. कां. 679
6. रामा. मं., यु. कां. 1-18

7. भट्टिकाव्य, सर्ग-10, श्लोक सं. 1
8. रामा. मं., अयो. कां. 935-947
9. रामा. मं., आ. प. 434-441
10. रामा. मं., उ. कां. 125
11. रामा. मं., उ. कां. 306-332

4

बौद्ध एवं जैन साहित्य में रामकथा का स्वरूप

चिरकाल से देश-विदेश में प्रचलित रामकथा की आधारशिला प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से महर्षि वाल्मीकि कृत रामकथा ही रही है। इसी को आधार मानकर विभिन्न कवियों तथा ग्रंथाकारों ने समय-समय पर देश, काल, धर्म एवं मौलिकता के आधार पर रामकथा को एक नवीन साँचे में डालने का प्रयत्न किया है। परन्तु उनकी इस मौलिकता में वाल्मीकीय रामकथा की मर्यादा का हनन नहीं हुआ है। उन्होंने तो मात्र कथा को रोचक एवं सर्वजनग्राह्य बनाने के उद्देश्य से ही मौलिकता का समावेश अपने ग्रंथों में किया है। परन्तु इस परम्परा से ठीक विपरीत बौद्ध एवं जैन वाङ्मय की रामकथा में बहुत परिवर्तन के साथ वाल्मीकीय रामकथा से अलग उसका एक विकृत स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। यदि वाल्मीकीय रामकथा के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में वर्णित रामकथा का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाय, तो इसके अमर्यादित एवं विकृत स्वरूप का स्पष्ट परिज्ञान होता है। सम्प्रति बौद्ध एवं जैन ग्रंथों के आलोक में उस युग की रामकथा के विकृत स्वरूप पर प्रकाश डालने का उद्योग किया जा रहा है।

सर्वप्रथम बौद्ध वाङ्मय के अन्तर्गत दशरथ जातक, अनामंक जाताकम् तथा दशरथ कथानम् ग्रंथों के क्रमशः रामकथा की विकृति का अवलोकन करते हैं [1]

दशरथ जातक में सीता, राम तथा लखन तीनों राथा दशरथ के ज्येष्ठ महिषी की संतानें हैं। तीनों पिता की आज्ञा से वन चले जाते हैं तथा अवधि पूर्ण होने पर तीनों राजधानी वापस आते हैं। राम अपनी बहन सीता से विवाह करके धर्म पूर्वक राज्य करने लगे।

दशरथ जातक के उपर्युक्त प्रसंग की सबसे बड़ी विकृति है कि राजा दशरथ की संतानें राम और सीता जो सहोदर भाई-बहन के रूप में थे, बाद में पति-पत्नी

हो गये। प्रायः लोक-व्यवहार में ऐसी घृणित परम्परा के उदाहरण तो दुर्लभ ही हैं, फिर वाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामकथा संबंधी ग्रंथ जो भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं तथा जिसमें राम और सीता के उज्ज्वल एवं पावन चरित्र के उन्नायक तत्त्वों की भूरि-भूरि प्रशंसा ही वर्णित है, रामकथा का यह विकृत, घृणित एवं अमर्यादित स्वरूप कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

दशरथ जातक के इस प्रसंग की जितनी भी आलोचना की जाय वह कम ही है, क्योंकि इसके अनुसार राम अपनी बहन सीता से विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। ध्यातव्य है कि कोई भाई अपनी सहोदर बहन से विवाह करके सारे धर्मों का विनाश तो वहीं कर देता है, तो फिर उसका कौन-सा धर्म शेष रह गया है जिसके सहारे वह धर्मपूर्वक जीवनयापन करेगा।

दशरथ जातक की अन्य विकृतियों के अन्तर्गत राजा दशरथ के वाराणसी में राज्य करने का उल्लेख, ज्येष्ठा रानी की तीन सन्तानें सीता, राम एवं लखन का वर्णन, ज्येष्ठा रानी की मृत्योपरान्त अन्य रानी से विवाह तथा उससे भरतकुमार की उत्पत्ति एवं राम के 16000 वर्ष शासन करने के उपरान्त स्वर्ग जाने का उल्लेख आदि घटनाएँ तथ्यविहीन एवं विकृत कपोल-कल्पना लगती हैं जिसमें परम्परागत रामकथा की मर्यादा का अतिक्रमण एवं हनन ही हुआ है।

दशरथ जातक का एक उल्लेखनीय प्रसंग और भी है जिसमें भरत जब राम की तृणपादुका लाकर शासन करने लगते हैं, उस समय राज्य में अन्याय होने पर ये दोनों तृणपादुकाएँ आपस में आघात करने लगती थीं। पुनः न्याय होने पर वे दोनों शान्त हो जाती थीं। प्रायः किसी भी रामकथा ग्रंथ में न तो राम की तृणनिर्मित पादुका का ही उल्लेख है और न ही उनकी पादुकाओं के विषय में इस तरह की कपोलकल्पित, बचकानी एवं उपहासपूर्ण कथा ही सुलभ है।

रामकथा से संबंधित बौद्धों के एक दूसरे ग्रंथ "अनामकं जातकम्" में वाल्मीकीय रामकथा से अलग जो एक विकृत स्वरूप देखने को मिलता है वह संक्षिप्ततः इस प्रकार है इस जातक की सबसे बड़ी विकृति यह है कि इसमें रामकथा से संबंधित किसी भी पात्र के नाम का उल्लेख नहीं है। हाँ, अप्रत्यक्ष रूप से सीता बनवास, सीता हरण, जटायु वृत्तान्त, बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतु बंध, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि प्रमुख घटनाओं का अवश्य ही उल्लेख मिलता है। दूसरी महत्वपूर्ण विकृति यह है कि राम को विमाता के कारण पिता द्वारा बनवास नहीं दिया जाता, अपितु वे अपने मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर स्वेच्छा से राज्य छोड़कर वन को चले जाते हैं। प्रायः किसी भी राम कथा में राम बनवास का ऐसा उल्लेख नहीं है। इस जातक में जिसे हम रामकथा के आधार पर बालि नाम से

संबोधित करते हैं वह सुग्रीव (बड़े बन्दर) का भाई नहीं चाचा है। प्रायः सभी रामकथाओं में बालि और सुग्रीव सहोदर भ्राता के रूप में ही दिखाई पड़ती हैं। इसमें एक रोचक घटना यह भी है कि इन्द्र एक छोटे बन्दर का रूप धारण करके बेधिसत्व (राम) की सहायता करते हैं तथा राम (रावण) को मार रानी को वापस ले आते हैं।

बौद्धों में प्रचलित रामकथा के तीसरे ग्रंथ 'दशरथ कथानकम्' में सीता या किसी भी राजकुमारी का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन काल से आज तक प्रायः जितने भी रामकथा विषयक ग्रंथ प्राप्त होते हैं, सबमें सीता का अवश्य ही उल्लेख है। पुनः सीता जो रामकथा की नायिका के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा जिनके बिना रामकथा वास्तव में रामकथा ही नहीं मानी जा सकती, सीता से विहीन इस ग्रंथ में रामकथा की अन्य घटनाएँ सुलभ हैं। यह कमी इस ग्रंथ की ही नहीं अपितु बौद्ध वाङ्मय और इस युग की रामकथा के विकृत स्वरूप का स्पष्ट प्रमाण है। इस ग्रंथ में सीता के न रहने से उनसे संबंधित सभी सीताहरण, सीता स्वयंवर, जनक वृत्तान्त, राम-रावण तथा बालि युद्धादि घटनाओं का अभाव भी है। इनके अतिरिक्त कालान्तर में जो भी बौद्ध ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, उनमें रामकथा का ही अभाव है।

बौद्ध वाङ्मय में रामकथा के विकृत स्वरूप के अध्ययनोपरान्त जैन ग्रंथों में वर्णित रामकथा पर विचार करना है। सर्वप्रथम विमलसूरि की रचना पउमचरियम्[2] का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि विमलसूरि ने इस ग्रंथ के कथानक में कोई आमूल परिवर्तन नहीं किया है, अपितु वाल्मीकीय रामकथा और इसमें बहुत अधिक साम्य है। परन्तु फिर भी इस ग्रंथ की कुछ घटनाएँ इतनी विचित्र एवं अमर्यादित हैं कि वे इस युग तथा जैन वाङ्मय में वर्णित रामकथा के विकृत स्वरूप का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इस स्थल पर संक्षिप्ततः उनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है

रावण-बालि संघर्ष के वृत्तान्त में रावण-बालि के पास दूत भेजकर उसकी बहन श्री-प्रभा को पत्नी स्वरूप माँगता है तथा बालि को आकर प्रणाम करने का आदेश देता है। बालि ऐसा न करके अपने भाई सुग्रीव को राज्य सौंपकर जैन दीक्षा ले लेता है। पुनः सुग्रीव रावण को प्रणाम कर बहन श्रीप्रभा का रावण के साथ विवाह कर देता है। रावण-बालि संघर्ष का यह वृत्तान्त सर्वथा मौलिक एवं विकृत है।

इसी प्रकार खरदूषण से रावण की बहन चन्द्रनखा (शूर्पणखा) के विवाह का उल्लेख तथा चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा एवं पुत्र शम्बूक का उल्लेख भी हास्यास्पद, तारतम्यहीन तथा विकृत घटनाएँ हैं।

हनुमच्चरित्र के अन्तर्गत हनुमान द्वारा चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा को

पत्नी के रूप में स्वीकार करना तथा हनुमान के अन्य विवाहों का उल्लेख भी पाया जाता है। प्रायः सभी रामकथाओं में हनुमान का चरित्र जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, एवं काम-दोष रहित के रूप में ही वर्णित है, परन्तु पउमचरियम् की उपर्युक्त घटना ठीक विपरीत अपने विकृत स्वरूप को ही प्रकट करती है।

राजा जनक की विदेह नामक महारानी से एक पुत्री सीता तथा एक पुत्र भामण्डल की उत्पत्ति का भी उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है। यह भामण्डल रावण के विरुद्ध युद्ध में राम की तरफ से युद्ध भी करता है। सर्वत्र रामकथाओं में सीता की उत्पत्ति अयोनिजा ही मानी गयी है साथ ही राजा जनक के किसी पुत्र का उल्लेख भी नहीं पाया जाता है।

पउमचरियम् के अन्तर्गत कई अवसरों पर लक्ष्मण को कन्याएं भेंट की जाती हैं। लक्ष्मण सबको स्वीकार करते हुए कहते हैं कि लौटते समय इन्हें ले जाऊँगा। इस प्रकार वज्रकर्ण 8 कन्याएँ तथा सिंहोदर आदि राजा 300 कन्याएँ लक्ष्मण को प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण वनमाला, रतिमाला तथा जितपद्मा को भी स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार सुग्रीव ने भी राम को अपनी 13 कन्याएँ समर्पित की थीं। रावण वध के पश्चात् राम-लक्ष्मण रावण के महल में ठहरते हैं तथा उन कन्याओं को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं, जिनके साथ उनकी मँगनी हो चुकी थी। लंका में ही उनके साथ विवाह संपन्न हो जाता है। इसके बाद राम और लक्ष्मण के 6 वर्ष तक लंका में रहने का उल्लेख प्राप्त होता है। लक्ष्मण की 16000 पत्नियाँ जिसमें विशल्या आदि 8 पटरानियाँ हैं तथा राम की 8000 पत्नियाँ जिसमें सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा प्रधान हैं, का उल्लेख मिलता है।

सीताहरण का कारण भी विमलसूरि ने कुछ भिन्न प्रकार से बताया है, किन्तु उसमें चन्द्रनखा के नाक, कान काटने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

सुग्रीव की विपत्ति के सन्दर्भ में जो कथा वर्णित है, उसमें साहसगति ने सुग्रीव का रूप धारण करके उसकी पत्नी और राज्य को छीन लिया था। राम साहसगति को मारकर उसका राज्य वापस लौटा देते हैं।

रावण सामन्त नामक दूत भेजकर सन्धि का प्रस्ताव करता है। रावण राम को अपने राज्य का एक अंश तथा 300 कन्याओं को इस शर्त पर देने को तैयार है कि वह सीता को त्याग दे तथा कुम्भकर्ण, इन्द्रजित तथा मेघवाहन को मुक्त कर दें।

इस प्रकार अन्त में लक्ष्मण (नारायण) ही (प्रति नारायण) रावण का वध करते हैं न कि राम। कुम्भकर्ण, इन्द्रजित तथा मेघवाहन आदि जो युद्ध में कैदी थे उन्हें मुक्त कर दिया गया। ये विरक्त होकर तपस्या करने को चले गए।

इस प्रकार पउमचरियं में उल्लिखित उपर्युक्त घटनाओं के आलोक में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये घटनाएं पारम्परिक रामकथा के सर्वथा विरुद्ध, घृणित एवं विकृत हैं।

दूसरे जैन ग्रन्थ गुणभद्रकृत उत्तरपुराण[3] में भी रामकथा का विकृत स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। इसमें राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे जिनके चार पुत्र हैं। राम सुबाला के गर्भ से तथा लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए। पुनः बाद में जब दशरथ अपनी राजधानी साकेतपुर स्थापित कर लेते हैं, तो भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से उत्पन्न हुए। दशरथ के पुत्रों की उत्पत्ति का यह प्रसंग पारम्परिक रामकथा से किसी प्रकार मेल नहीं खाता। उनकी राजधानी परिवर्तन की यह घटना भी किसी रामकथा ग्रन्थों में सुलभ नहीं है। राम-लक्ष्मण के विवाह के सन्दर्भ में जो प्रसङ्ग इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं, वह भी इस युग की रामकथा के विकृति का ही परिचय प्रस्तुत करती हैं। एक यज्ञ की रक्षा के लिए जनक राम और लक्ष्मण को बुलाते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर राम-सीता का विवाह होता है। इसके बाद राम 7 अन्य कुमारियों के साथ, लक्ष्मण पृथ्वीदेवी आदि 16 राजकन्याओं के साथ विवाह करते हैं।

नारद से सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर ही रावण उन्हें हर लाने का संकल्प करता है। किसी अन्य कारण से सीताहरण नहीं होता। इसके बाद दशरथ को सीताहरण का समाचार स्वप्न द्वारा मालूम होता है। तथा वे इस समाचार को राम के पास भेजते हैं इतने में सुग्रीव और हनुमान बालि के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए पहुँचते हैं। लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। इसके बाद लक्ष्मण राम के साथ 42 वर्ष तक दिग्विजय यात्रा करते हैं और अर्द्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या वापस लौटते हैं। अनन्तर दोनों का सम्मिलित अभिषेक सम्पन्न होता है। लक्ष्मण की 16000 और राम की 8000 रानियाँ बताई जाती हैं।

उत्तरपुराण की उपर्युक्त घटना भी अन्य रामायण ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न रूप में ही दृष्टिगोचर होती हैं, जिसमें पारम्परिक रामकथा की मर्यादा का अतिक्रमण एवं विकृत स्वरूप ही दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में वर्णित रामकथा सम्बन्धी उपर्युक्त घटनाएँ तत्कालीन रामकथा के विकृत स्वरूप को ही स्पष्ट करती हैं।

संदर्भ

1. दशरथ जातक की समस्या रामकथा बुल्के, पृ. 81 से 104
2. रामकथा बुल्के, पृ. 67-76
3. रामकथा बुल्के, पृ. 77-80

5

रामकथा की व्यापकता एवं विदेशों में रामकथा

आर्यावर्त का प्रतिनिधि पुरु0ष यदि भारतीय इतिहास में किसी को कहा जा सकता है तो वह राम हैं। उनके जीवन में आर्य आदर्शों का जो विकास हुआ, वह इस देश के द्वारा ऐसा स्वीकृत हुआ कि हमारी जीवन-धारा का एक विशिष्ट अंग बन गया। आज समग्र भारत राममय जान पड़ता है। हिमालय की कन्दराओं से राम नाम गूँज रहा है। विन्ध्य-पर्वत श्रेणी राम नाम के जयघोष से निनादित है। गोदावरी और कावेरी की उत्तुंग तरंगों में अवगाहन करने वाले स्नातक राम-राम का जाप करते हुए राम के पुनीत नाम में रमे रहते हैं। कन्याकुमारी, रामेश्वरम् के मन्दिर इसी पावन नाम का स्मरण कराते हैं। पंजाब, सिन्धु, राजस्थान, अंग-बंग और कलिंग में से कौन सा ऐसा प्रान्त है, जो इस पवित्र राम नाम की दीक्षा से वञ्चित कहा जा सके? तक्षशिला राम के ही वंशज का बसाया हुआ है। लाहौर को 'लवपुर' और कसूर को 'कुशपुर' कहा जाता है। समग्र देश राम जीवन से संबद्ध तीर्थस्थानों से व्याप्त है। हमारे पर्व-नवरात्र, दीपावली, दशहरा आदि आज भी देश भर में मनाये जाते हैं। कवियों ने राम-गाथा-गायन में अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझी है। संतों ने राम के निर्गुण रूप की उपासना की है तो वैष्णव कवियों ने उनके सगुण रूप को अपनाया है। राम, सम्प्रदाय भावना से भी ऊँचे उठ गये। बौद्ध सम्प्रदाय में 'दशरथ जातक' लिखा गया तो जैन साहित्य में 'पउमचरियम्' जैसे ग्रंथ लिखे गये। आज का भारतीय कवि भी राम को अपनी वाणी का विषय बनाता है और उस पर कविता लिखता है। शिक्षित वर्ग ही नहीं अपढ़ अशिक्षित, कोल-भील-गोड़ आदि सभी के हृदय में राम नाम बसा हुआ है और अब जो अनुसंधान हुए हैं, वे भारत के बाहर भी दूर-दूर देशों में पहुँचे हुए इस राम नाम की तेजस्विता की उद्घोषणा कर रहे हैं।

भारत के भगवान राम ने केवल अपने देश को ही नहीं, विश्व के सभी भागों को प्रेरित और प्रभावित किया। इसीलिए रामकथा निस्संदेह विश्व की सबसे अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक कथा बन गयी है, जिसकी शक्ति और प्रभाव का अनुमान इसकी अद्वितीय लोकप्रियता और विश्वव्यापी प्रचार से लगाया जा सकता है।

रामकथा हजार, दो हजार वर्ष ही नहीं शायद उससे भी पहले सुदूर देशों में गयी, और उन्हें ले जाने वाले ये भारत के संस्कृतनिष्ठ व्यापारी, राजपरिवारों के लोग तथा वे विदेशी यात्री और विद्वान जो ज्ञान-प्राप्ति की अभिलाषा में समय-समय पर भारत की यात्रा पर आते थे। इस प्रकार रामकथा विदेश में गयी, वह वहाँ के साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं कला में पूर्णरूपेण समाहित होकर उनका प्राणतत्त्व बन गयी। यही कारण है कि 'मैक्सिको' में आज भी रामसीतोत्सव मनाया जाता है। 'पेरू' का सूर्यमन्दिर सूर्य वंश में राम की स्मृति को जागृत कर देता है। 'इटली' का 'रोम' नगर अपने मूल रूप में राम का ही अभिव्यञ्जक है। मिश्र के राजाओं के नाम भी राम शब्द से संयुक्त है। एशिया के पश्चिम में भी कुछ स्थानों के नाम 'राम' शब्द से प्रारम्भ होते हैं, जैसे रामसरा राम मल्लाह। 'यूनान' की कला और वीरता पर राम की मुद्रा अंकित है। 'रूस का साईबेरिया' और 'चीन के उत्तर का मंगोलिया' रामकथाओं से निस्सृत लोकगाथाओं को अपने क्रोड में संजोए हुए हैं। 'जापान' के राजा सूर्यवंश और उत्तर में लक्ष्मी का मन्दिर तथा 'ईरान' के राजा का अपने को 'आर्यमिहिर' (सूर्य) कहना, आर्यों के पौराणिक इतिवृत्त को स्मरण करा रहे हैं। फिजी, मारिशस, गुयाना, ट्रिनिडाड, सूरीनाम आदि देशों में जहाँ भारत के प्रवासी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं वहाँ तो राम का लगभग वही स्वरूप सुरक्षित है जो भारत में है।

सन् 251 में ही रामायण का चीनी भाषा में 'काइ. सइ.. ह्नी ने अनुवाद किया। यह भारत से बाहर की भाषा में प्रथम रूपान्तर होने के कारण महत्वपूर्ण है। सन् 472 में चीनी भाषा में एक दूसरा अनुवाद हुआ जो 'केकय' ने लुप्त संस्कृति कृति 'दशरथ निदान' से किया था। 16वीं शती में चीनी-उपन्यास परम्परा में 'वाइनर' नाम से सुविख्यात उपन्यास लिखा गया, जिसमें हनुमान जी द्वारा सीताजी की खोज का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।[1]

राम कथा का प्रसार उत्तर के दूरतम प्रदेश 'साइबेरिया' तक हुआ। यहाँ रामायण तिब्बत होती हुई पहुँची। 'तुनहवाड़' की गुफाओं से क्रमशः 7वीं, 29वीं शती की दो तिब्बती पाण्डुलिपियाँ मिली हैं, जिनमें रामायण की दो शाखाएं हैं। 15वीं शती में 'शाइगुडपा छोवाड़ ड्राक्याइपाल' ने तिब्बती भाषा में छन्दोबद्ध रामायण लिखी। का प्यादर्श और सुभाषित रत्ननिभि की तिब्बती टीकाओं में भी रामायण उपलब्ध है।

तिब्बत की ही भाँति खोतान की राम कथा जो नवीं शताब्दी ई. की मानी जाती है तिब्बती रामायण से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

छठी शताब्दी में सिंहली नरेश एवं कवि 'कुमारदास' ने 'जानकी हरण' काव्य की रचना की। यह लंका में रचित प्राचीनतम् संस्कृत ग्रंथ है। 12वीं शती में एक अज्ञातनामा लेखक ने स्थानीय सिंहली भाषा में इसका अनुवाद भी किया। वर्तमान शती में रामायण का सिंहली अनुवाद 'सी. डान. डी.' शिल्पा ने रामायण का रूपान्तर करके श्रीलंका में रामकथा को सुविख्यात कर दिया। रामायण के आदर्श श्रीलंका की धरोहर बन गये हैं।

दक्षिण पूर्वी एशिया में रामायण को प्रसारित करने में 'इंडोनेशिया' का विशेष योगदान रहा है। इंडोनेशिया की प्राचीनतम राम संबंधी साहित्यिक रचना 'रामायण काकविन' है जो दसवीं शताब्दी का माना जाता है। नवीं शती में रामायण इंडोनेशिया के भव्य शिवालय 'चंडी लोरीजोड राड' में उत्कीर्ण की गयी। यह रामायण काकविन से कुछ भिन्न है जिससे सिद्ध होता है कि नवीं शती तक इंडोनेशिया में रामायण की अनेक शाखाएं थीं। सन् 1379 के 'पानतरान' मन्दिर में रामायण बाह्य भित्तियों पर उत्कीर्ण हैं। इसकी कला स्थानीय वायाड़ शैली की है। इंडोनेशिया में 14वीं शती में रामायण के कुछ दृश्य अति लोकप्रिय हो चुके थे।

'जावा' में एक प्राचीन उत्तर काण्ड मिलता है जिसमें वाल्मीकीय उत्तर काण्ड की कथा का गद्य में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त एक 'चरित रामायण' भी पाया जाता है जिसके 101 श्लोकों में रामायण के 6 काण्डों की कथा के साथ-साथ व्याकरण के उदाहरण भी दिए गए हैं। 'हिंमाशु भूपण सरकार' जावा की प्राचीन भाषा की तीन रचनाओं का उल्लेख करते हैं सुमन सांतक काकविन (11वीं शती) हरिश्रय काकविन (13वीं श.) अर्जुन विज्य (14वीं श.)। जावा का आधुनिक 'सेरत राम' भी रामायण काकविन की भांति वाल्मीकीय कथा से बहुत कुछ मिलता है। मध्य जावा के 'परमबनन' (परब्रह्म) नामक स्थान पर नवीं श. ई. का एक शिव मंदिर है। इस मंदिर के चारों ओर की ऊँची दीवारों पर रामायण की समस्त घटनाओं का चित्र-लिपि में चित्रण किया गया है। पूर्व जावा के पनतरन नामक स्थान के 14वीं श. पूर्वार्द्ध के एक शिव मंदिर में भी रामकथा पाषाण चित्रलिपि में अंकित हैं।

रामायण काकविन की प्राचीन परम्परा को छोड़कर इंडोनेशिया में रामकथा का एक अर्वाचीन रूप भी प्रचलित है, जो अधिक लोकप्रिय है तथा जिसके आधार पर आधुनिक समय तक 'जावा' और 'सुमात्रा' में राम कथा संबंधी नाटकों का अभिनय होता है। जावा का नाटक साहित्य प्रायः 'सेरत कांड' तथा 'राम कोलिंग' पर आधारित है। जावा और सुमात्रा द्वीपों में रामकथा का प्रचार विशेष रूप में दिखलाई

पड़ता है। सुमात्रा तो हिन्दू द्वीप है और वह पूर्णतः रामकथा से आप्लावित है, किन्तु मुस्लिम बहुल जावा के 'जोगजोकर्ता' में रामकथा संबंधी नृत्य नाटक विश्व भर में प्रसिद्ध हैं।

मलेशिया में सन् (1400-1500) के बीच 'हिकायत सेरी राम' की रचना हुई। तब से यह रामायण की छाया का लीलाओं का आधार बन गया। इसके अतिरिक्त मलेशिया में रामायण के विभिन्न स्थायी रूपान्तर भी पाए जाते हैं, जिनमें 'हिकायत महाराज रावण' 'श्रीराम' तथा रामकथा का पातानी पाठ उल्लेखनीय है। इससे यह ज्ञात होता है कि रामायण वहां की लोकपरम्परा में अभिन्न रूप से रम कर लोकप्रिय हो चुकी थी। मलेशिया में आज भी सूत्रधार जो 'दालाइ' कहलाता है, एक वर्ष में 2-3 सौ बार अभिनय करता है। यह मनोरंजन मात्र नहीं अपितु इसका धार्मिक महत्व भी है।

'वर्मा' (ब्रह्म देश) में भी रामायण का प्रचार शताब्दियों से रहा है। वर्मा नरेश क्यान्जित्था (सन् 1074-1112) का रामायण से विशेष अनुराग था। उन्होंने अपने को राम वंशज कहा है, वर्मा में रामायण का आधुनिक अभिनय 21 रात चलता था किन्तु आजकल वह केवल 12 रात ही होता है।

सातवीं शती में कम्बोडिया (कम्बुज देश) में सर्वत्र रामायण के उद्धरण पाये जाते हैं। जिनसे पता चलता है कि रामकथा कम्बुज जीवन का अभिन्न प्रतीक बन चुकी थी। विशाल स्मारकों में तक्षित रामायण के शिल्प कम्बुज की ऐतिहासिक घटनाओं के महत्व को सप्रमाण सिद्ध करते हैं। 'बायोन' मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर महाराज 'जयवर्मन सप्तम' की चाम जाति पर दनदनाती विजय उत्कीर्ण की गयी है। यह रामायण पर आधारित है यह दिखाने के लिए कि कम्बुज के महाराज जयवर्मन राम के अवतार हैं और रावण रूपी चाम जाति को पराजित करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। सप्तम् जयवर्मन के उपरान्त रामायण कम्बुज जीवन का अभिनय अंग बन गयी। अभिनय होने लगे, भित्तिचित्रों के रूप में आलेखन होने लगा, कथावाचकों ने गाँव-गाँव घूमकर उसका प्रचार किया और राजभवनों के अभिनय इसके सत्यम्-शिवम् से झंकृत हो उठे। यह कम्बुज देश के मानस की भव्यतम् लीला बन गयी। यहाँ पर यह उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण तथ्य है कि आंकोर के विशाल वैष्णव मन्दिर में उत्कीर्ण रामायण जावा के रामायण काकविन के अधिक समीप है।[2]

थाइलैण्ड (श्यामदेश) में रामायण का रूपान्तर 'राम-कियेन' के नाम से प्रख्यात है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर यहां अनेक रामायण लिखी भी जा चुकी हैं, किन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् 1906 में नरेश 'राम प्रथम' ने लिखी थी। इसी नरेश की वंश परम्परा आज भी थाईलैण्ड में चली

आ रही है और आज के नरेश भी अपने नाम के साथ 'राम' लगाते। थाईलैण्ड में अयोध्या नाम की नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं 'लोबपुरी' (लवपुरी) भी है बैंकाक के एक प्रसिद्ध मन्दिर की दीवारों पर रामकियेन की घटनाएं चित्रित हैं। यहां के राष्ट्रीय संग्रहालय में राम की अनेक मूर्तियां देखी जा सकती हैं। भवन के बाहर भी राम की मूर्त्ति है।

श्यामदेश के उत्तर पूर्वीय प्रान्तों में 'लाओ' भाषा बोली जाती है। 16वीं शताब्दी में 'राम जातक' की लाओ भाषा में रचना की गयी। राम जातक का एक अन्य रूप 'पालक पालम' के नाम से भी विख्यात है। सन् 1553 ई. के पहले 'एच; देदिए' ने लाओस में तीन और राम कथा विषयक रचनाओं का पता लगाया था   तुआलाफी, द्वन्दुभि, लंकानोय, तथा पोम्पचका। इनकी अकाल मृत्यु के कारण इन रचनाओं का प्रकाश नहीं हो पाया, किन्तु एक अन्य विद्वान ने पोम्पचका की एक हस्तलिपि प्राप्त की है तथा इसके कथानक का सार सन् 1957 ई. में प्रकाशित किया इस विपुल रामकथा साहित्य के अतिरिक्त अभिनय, कला एवं राजकीय सम्मान से भी लाओस में रामकथा पूर्णरूपेण व्याप्त है।

इस प्रकार चाहे बौद्ध थाइलैण्ड हो, चाहे मलय देश और जावा द्वीप का मुसलमान हो चाहे सुमात्रा द्वीप का हिन्दू हो सभी के लिए राम समान रूप से महान और श्रेष्ठ हैं।

संदर्भ

1. रामकथा उत्पत्ति एवं विकास   बुल्के, पृ. 261-281
2. रामकथा काकाविन (हिंदी, संस्कृत अनुवाद)   प्रो. राजेन्द्र मिश्र

6

को कृपाल रघुवीर सम

कृपालु श्रीराम के कृपा की समता करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्रत्येक जीव के प्रति उनकी कृपा अद्वितीय एवं विलक्षण है। यदि राम को कृपा का सागर कहें तो भी उनकी अपरिमित कृपा का ही तिरस्कार होता है। वस्तुतः वे कृपामय हैं। उनकी कृपा के भी कई रूप हैं, कहीं वह प्रेम के रूप में दर्शन देती है तो कहीं दण्ड के रूप में। परन्तु दोनों ही परिस्थितियों में वह श्लाघ्य है। प्रेम से तो राम ने अनेकों पर कृपा की। सारे वानर-भालुओं को जो गौरव प्रदान किया, वह बड़े-बड़े ऋषियों-महर्षियों को दुर्लभ है। गौतम की पत्नी अहल्या में इतनी शक्ति ही नहीं थी कि बेचारी आर्त होकर राम को पुकार सकती, किन्तु वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसका उद्धार कर, उस पर अपरिमित कृपा की। दण्डक वन में पहुँचकर राक्षसों का वध करके मुनियों को अभय प्रदान करते हुए उन पर कृपा की। गीधराज जटायु पर जो कृपा हुई वह तो सर्वथा अनूठी है। दीन सुग्रीव को बालि के महान अत्याचार से बचाया। अङ्गद को दीन जानकर अपनाया तथा युवराज पद पर अभिषक्त किया।

राम की प्रसन्नता तो दिव्य ही है। वह तो जीव को अप्राप्य भी प्राप्त कराता है, किन्तु उनका क्रोध या दण्ड भी मुक्ति दिलाने वाला होता है। उनकी कृपा के दूसरे स्वरूप दण्ड और क्रोध का वर्णन भी श्रीरामचरितमानस में अत्यन्त हृदयग्राही है। राक्षसों को राम ने मारा यह सत्य है। यदि स्थूल रूप से देखा जाए तो राम ने **'विनाशाय च दुष्कृताम्'** के अनुसार एवं शत्रुतावश ही ऐसा किया। परन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो उन्होंने मारा नहीं अपितु तारा, उन पर कृपा की। राम के हाथों से जितने भी राक्षस मरे सबको दुर्लभ गति प्राप्त हुई। यह उनकी अपरिमित कृपा नहीं तो और क्या है। ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध, कबन्ध, खर-दूषण, त्रिशिरा, कुम्भकर्ण एवं रावण प्रभृति सभी राक्षसों तथा वानरराज बालि एवं शूद्र शम्बूक आदि का वध करके राम ने उन पर कृपा की। यह राम की कृपालुता ही है कि अधम-से-अधम राक्षसादि को भी निज हाथों से वध द्वारा परमपद दिलाया।

राम की कृपा के इसी क्रोध और दण्डस्वरूप का जीवन्त उदाहरण अरण्यकाण्ड के प्रारम्भ से ही (प्रथम दोहे के अन्तर्गत)[1] दर्शनीय है

अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुन गेह।।

काक जयन्त सीताजी के चरणों में चोंच मारने की धृष्टता कर बैठता है। प्रिया सीता के लहूलुहान पैरों को देखकर श्रीराम के क्रोध का पार न रहा और उन्होंने मन्त्रप्रेरित एक ईषिका बाण चला दिया। भयभीत काक को तीनों लोकों में कहीं भी शरण नहीं मिलती। अंततः त्राहि-त्राहि करता हुआ श्रीराम के चरणों में आकर गिर पड़ा। कृपालु राम को दया आ गयी और उन्होंने उसे एक आँख का काना बनाकर छोड़ दिया [2]

सुन कृपाल अति आरत बानी।
एक नयन करि तजा भवानी।।

इतने बड़े अपराध पर तो वध के अतिरिक्त और कोई दण्ड उचित नहीं था किन्तु श्रीराम इतने महान् हैं कि आर्त्त काक के अपराध को क्षमा कर देते हैं। श्रीराम की इसी कृपालुता से प्रभावित होकर ही गोस्वामी तुलसीदास ने यहाँ तक लिख दिया कि रघुवीर के समान और कोई कृपालु नहीं [3]

कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर वध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम।।

राम के इस कृपालु स्वभाव का न केवल एकमात्र यही उदाहरण है, अपितु अरण्यकाण्ड में पदे-पदे इसका दर्शन होता रहता है। चित्रकूट में मुनियों से विदा लेकर जब राम अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं तो भावविह्वल अत्रि एवं उनकी पत्नी अनसूया ने अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक आतिथ्य करते हुए उनकी पूजा की [4]

नमामि भक्तवत्सलं, कृपालु शील कोमलं।

अत्रि के इस पूजा की प्रथम पंक्ति में ही श्रीराम की कृपालुता की प्रशंसा की गयी है। किंवा, स्वयं कृपानिधान जो दूसरों पर कृपा करते रहते हैं, अत्रि से विदा लेते हुए कहते हैं कि हे मुनिवर! मैं जा रहा हूँ, मुझ पर अपनी कृपा बनाये रखियेगा। यह है कृपानिधान के कृपाभाव की पराकाष्ठा। प्रभु की इस चतुराई की प्रशंसा गोस्वामीजी ने अत्रि के द्वारा बड़े मार्मिक ढंग से करायी है [5]

तब मुनि सन कह कृपानिधाना, आयसु होइ जाउँ बन आना।
संतत मो पर कृपा करेहू, सेवक जानि तजेहु जनि नेहू।
धर्मधुरंधर प्रभु कै बानी, मुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी।
जासु कृपा अज शिव सनकादी, चहत सकल परमारथ बादी।
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे, दीन बन्धु मृदु बचन उचारे।

इस प्रकार भक्त अत्रि को अपने दिव्य दर्शन से कृपान्वित करके बिदा लेते हैं। रास्ते में उनके ऊपर विराध राक्षस ने आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप राम ने उसका वध कर दिया। किन्तु धन्य हैं कृपालु राम, उसकी तड़पन और दुःख उनसे न सहा गया और उन्होंने विराध को परमधाम भेज दिया। यह है उनकी अपरिमित कृपा का उत्कृष्ट उदाहरण [6]

मिला असुर विराध मग जाता, आवतहीं रघुबीर निपाता।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा, देखि दुखी निज धाम पठावा।

उनकी अपरिमित कृपा के प्रेमस्वरूप का दर्शन तब होता है जब वे भक्तों तथा मुनियों को दर्शन देकर कृपान्वित करते हैं। मुनि सरभंग श्रीराम दर्शन के लिए व्याकुल थे। राम जब उनके आश्रम में पहुँचते हैं तो भावविह्वल सरभंग कह उठते हैं [7]

नाथ सकल साधन मैं हीना, कीन्हीं कृपा जानि जन दीना।

यही नहीं, श्रीराम दर्शन के बाद ही सरभंग मुनि अपने शरीर को त्यागकर स्वर्ग सिधार जाते हैं [8]

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, राम कृपा बैकुंठ सिधारा।

ठीक इसी प्रकार राम दर्शन को आतुर सुतीक्ष्ण को भी राम ने अपने दर्शन से कृपान्वित किया। राम को देखते ही सुतीक्ष्ण उनके चरणों में गिर पड़ते हैं। कृपालु राम उनको अपने पैरों से उठाकर हृदय से लगा लेते हैं [9]

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला, कनक तरूहि जनु भेंट तमाला।

कुंभज ऋषि भी राम के दर्शन सुख के लिए आर्त थे। राम ने उनके आश्रम में पहुँचकर दर्शन दिया और उन्हें कृपान्वित किया। भावविह्वल ऋषि ने प्रभु से यह वर माँगा [10]

यह बर माँगऊँ कृपा निकेता, बसहु हृदय श्री अनुज समेता।

खर-दूषन और त्रिशिरा को भी राम के हाथों मरने का सौभाग्य मिला। वे धन्य हो गये तथा उनकी कृपा से निर्वाण को प्राप्त हो गये [11]

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान।

मारीच को जब यह ज्ञात हो गया कि मुझे तो मरना ही है चाहे रावण के हाथों मरूँ या राम के। उसने राम दर्शन का सुख लेते हुए कृपालु राम के हाथों मरना श्रेयस्कर समझा [12]

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं।

तदनुसार राम के हाथों उसका वध हुआ। अंत में जब उसके मुख से राम का उच्चारण हुआ तो कृपालु राम ने इस अन्तर को समझकर उसे दुर्लभ गति को प्राप्त कराया। राम की इस कृपालुता को देखकर सुर-नर-मुनि सब प्रसन्न होकर फूलों की बरसा करने लगे [13]

विपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहँ दीनबन्धु रघुनाथ।

सीता की खोज में भटकते हुए श्रीराम की घायलावस्था में पड़े जटायु से भेंट हुई। सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के बाद श्रीराम की आँखें भर आयीं। अपने हाथों से जटायु के घावों को सहलाकर श्रीराम ने उसकी पीड़ा दूर कर दी तथा कहा कि हे तात! तुम अब प्राण त्यागकर मेरे धाम को चले जाओ। श्रीराम का स्मरण करते हुए [14] (नित **नौमि राम कृपाल, बाहु विशाल भव भय मोचनंत्** गीधराज श्रीराम के धाम पहुँच गया। यही नहीं, उनकी अपरिमित कृपा देखिये कि वे गीधराज का यथोचित शरीर संस्कार भी करते हैं।

श्रीराम के कृपा भाव की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। रामचरितमानस में पदे-पदे उनके लिए कृपालु, कृपानिधि, कृपानिकेत एवं कृपामय आदि विविध संबोधनों का प्रयोग हुआ है। यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो प्रत्येक एक-दो दोहे के अंतर्गत कृपालु शब्द या कृपामय भाव राम के लिए प्रयुक्त पाये जाते हैं। कृपालु शब्द एवं भाव दोनों ही जैसे राम के पर्यायवाची से प्रतीत होते हैं। उनकी कृपालुता से गद्गद होकर देवाधिदेव शंकर भी प्रशंसा करने से नहीं अघाते [15]

कोमल चित अति दीनदयाला।
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।

संदर्भ

1. श्रीरामचरितमानस अ. दो. 1
2. मानस अ. दो. 1, चौ. 14
3. मानस अ. दो. 2
4. मानस अ. दो. 3, छ. 1
5. मानस अ. सो. 5, चौ. 2, 3, 4, 5
6. मानस अ. दो. 6, चौ. 6, 7
7. मानस अ. दो. 7, चौ. 4
8. मानस अ. दो. 8, चौ. 1

9. मानस अ. दो. 9, चौ. 23
10. मानस अ. दो. 12, चौ. 10
11. मानस अ. दो. 20क
12. मानस अ. दो. 25, छंद
13. मानस अ. दो. 27
14. मानस अ. दो. 31, छंद 1
15. मानस अ. दो. 32, चौ. 1

7

शबरी के जूठे बेर (फल) की प्रामाणिकता

आर्यावर्त तथा इससे बाहर सुदूर देशों में जहां कहीं भी रामकथा का प्रचार-प्रसार है, वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति जो रामकथा से अवगत है, वह शबरी प्रसङ्ग से अवश्य ही किसी-न-किसी रूप में परिचित है। रामकथा साहित्य के अन्तर्गत शबरी प्रसङ्ग आधिकारिक कथा से प्रत्यक्ष रूपेण सम्बन्धित न होते हुए भी परोक्ष रूप में यत्किञ्चिदपि अवश्य ही सम्बन्धित है। प्रिया-वियोग में व्याकुल राम का शबरी आश्रम में पहुँचकर उसके अर्घ्यपादासन एवं फलाहार प्रभृति आतिथ्य के द्वारा श्रमापहार करना तथा उसके द्वारा सीता खोज के लिए सुग्रीव मैत्री की सलाह देना आदि बातें शबरी प्रसङ्ग की युक्ति-युक्तता एवं प्रकरीत्व को पुष्ट करती हैं। आदि काव्य के रचनाकाल से अद्यावधिपर्यन्त प्रायः विभिन्न रामकथा ग्रन्थों में शबरी से सम्बन्धित अनेक रोचक कथाएँ वर्णित हैं, किन्तु शबरी प्रसङ्ग के उन सभी सन्दर्भों से हमारा विशेष अभिप्राय नहीं। यहां इस स्थल पर हमारा अभिप्राय मात्र इस प्रसङ्ग की उस सर्वाधिक ज्वलन्त एवं कौतूहलपूर्ण घटना से है जिसमें शबरी ने राम को आतिथ्य में खाने के लिये जूठे बेर या फल दिये थे। क्या शबरी ने राम को जूठे बेर या फल खिलाये थे, यह अनुसंधान का विषय है?

प्रायः रामकथा प्रेमी जनमानस में यह तथ्य विधिवत व्याप्त है कि शबरी ने राम को जूठे बेर या फल खिलाये थे, किंवा यह तथ्य इस स्तर तक लोक में प्रचलित एवं प्रस्तुत है कि शबरी और उसके द्वारा राम को खिलाया गया जूठा बेर या फल दोनों बातें अन्योन्याश्रित या एक दूसरे की सम्पूरक सी प्रतीत होती हैं। दूसरे शब्दों में यदि यह कहें कि शबरी प्रसङ्ग को लोग इसी रूप में जानते हैं या महत्व देते हैं कि उसने राम को जूठे बेर या फल खिलाये थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। किम्बहुना, लोक-व्यवहार में यह तथ्य इस स्तर तक प्रचलित है कि कदाचित् कोई उच्चकुलोत्पन्न किसी निम्नजातीय शूद्र इत्यादि के यहां कुछ खा-पी लेता है तो वह उसके परिमार्जनार्थ इसी तथ्य का आश्रय लेता है कि भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने भी

तो शबरी के घर जूठे बेर या फल खाये थे, यदि मैंने ऐसा किया तो क्या बुरा किया। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि शबरी कथा से सम्बन्धित इस सर्वाधिक प्रचलित प्रसङ्ग (शबरी ने राम को जूठे बेर खिलाये थे) की उत्पत्ति स्थली कहां है, जबकि रामकथा के आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण तथा हिन्दी रामकथा साहित्य के आदि ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में इस तथ्य विशेष का कोई संकेत नहीं प्राप्त होता है जो कि रामकथा साहित्य की आधारपीठ एवं भारतीय जनमानस में समादृत है। सम्प्रति इस तथ्य विशेष के अनुसंधान हेतु अथवा इस संदर्भ में कौतूहल के उपशमन हेतु संस्कृत, हिन्दी तथा अन्यान्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में रचित रामकथा ग्रन्थों का यथासाध्य विहङ्गमावलोकन परमोपादेय प्रतीत होता है।

एतदर्थ, सर्वप्रथम रामकथा के आदिग्रन्थ वाल्मीकि रामायण के शबरी प्रसङ्ग को लेते हैं। वाल्मीकि रामायण के इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम शबरी द्वारा राम-लक्ष्मण के आतिथ्य आदि का उल्लेख है। पुनः शबरी अपने गुरुजनों की चर्चा करते हुए राम से कहती है कि उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने दिव्यलोक जाते समय मुझसे कहा था कि तेरे इस परम पवित्र आश्रम में राम पधारेंगे तथा लक्ष्मण के साथ तेरे अतिथि होंगे। तुम उनका यथावत सत्कार करना। अतः पुरुषसिंह! मैंने आपके लिये पम्पा तट पर उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के जङ्गली फल मूलों का संचय किया है।[1]

मया तु संचित वन्यं विविधं पुरुषर्वभ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम्।।

वाल्मीकि रामामयण के इस प्रसङ्ग में यद्यपि शबरी द्वारा संगृहीत उन फलों के जूठे होने का कहीं संकेत नहीं मिलता है, तथापि इस स्थल पर तर्क का यह अवसर अवश्य उत्पन्न होता है कि चूंकि शबरी को राम के उस आश्रम पर आने की पूर्व सूचना थी। अतः भक्ति भावना की विह्वलता तथा प्रेमातिशय के कारण सम्भवतः संग्रह के समय उसने बेर आदि फलों को चखकर चुना हो। यह तथ्य 'संचितं' शब्द से परोक्षरूपेण ध्वनित होता है।

सम्प्रति आन्नद रामायण के शबरी प्रसङ्ग पर दृष्टिपात किया जाय। आनन्द रामायण के सारकांड के सप्तम सर्ग में वर्णित शबरी प्रसङ्ग के अनुसार जब राम और लक्ष्मण शबरी के पास पहुँचते हैं तो उसने वन के अच्छे-अच्छे पुष्पों तथा फलों से उनका पूजन सत्कार किया

ततो रामो लक्ष्मणेन शबरी-संनिधिं ययौ।[2]
साऽपि संपूज्य श्रीरामं विशेषैर्वनसंभवै।।

इसके बाद वह कहती हैं कि हे राम! आप यहां से चलकर पम्पा सरोवर जाएँ। उसके किनारे पर लगे हुए वृक्षों के विविध फल खाकर तथा जलपान करके आप

सुग्रीव के पास जाइयेगा

तत्तटाके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च।
भक्षस्व त्वं जलं पीत्वा ग्राहि सुग्रीव संनिधिम्।।[3]

आनन्द रामायण के उपर्युक्त प्रसङ्ग में भी कहीं इस बात का संकेत नहीं मिलता कि शबरी ने राम को जूठे फल या बेर खिलाये थे। उसने वन के अच्छे पुष्पों तथा फलों से उनका स्वागत किया था। सम्भव हो कि उन फलों में कौन-सा फल अच्छा है इसके लिये वह उनका स्वाद ले सकती है, किन्तु जूठे होने का तो संकेत नहीं प्राप्त होता है।

इसी शृङ्खला में अध्यात्म रामायण के अरण्यकांड के इस प्रसङ्ग के अनुसार शबरी ने अर्घ्यादि विविध सामिग्रियों से राम और लक्ष्मण का विधिवत पूजन कर जो अमृत समान दिव्य फल उसने श्री रामचन्द्रजी के लिये इकट्ठे कर रखे थे, वे हर्ष से जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें दिये और उनके चरणकमलों का चन्दनयुक्त सुगन्धित पुष्पों से पूजन किया।[4]

सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं समपर्यया।
सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा।।
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः।
पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धः सानुलेपनं।।

अध्यात्म रामायण के इस प्रसङ्ग में भी जूठे फलों का कोई उल्लेख नहीं है। हां यदि चाहें तो यहां भी उसी तर्क का आश्रय ले सकते हैं कि यदि शबरी ने श्रीरामचन्द्र जी के लिए अमृत के समान दिव्य फल इकट्ठे कर रखे थे तो उस फल के अमृतत्व या दिव्यत्व का भाव उसे पूर्वस्वाद के बिना कैसे हो सकता है। किन्तु यह तो मात्र खींचतान है जबकि यहां इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त रामकथा ग्रन्थों के अतिरिक्त योगवाशिष्ठ रामायण, रामायणचम्पू तथा अद्भुत रामायणादि रामायणों में तो शबरी प्रसङ्ग का उल्लेख ही नहीं है। इसी प्रकार शोध के फलस्वरूप यह पता चलता है कि रामकथा सम्बन्धी संस्कृत महाकाव्यों रघुवंश, भट्टिकाव्य, जानकीहरण, रामचरित, रामायण मञ्जरी, दशावतार चरित तथा नाटकों प्रतिमा नाटक, महावीर चरित, अनर्घराघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक तथा आश्चर्यचूड़ामणि आदि में या तो शबरी प्रसङ्ग का वर्णन ही नहीं है, और यदि है तो अति संक्षिप्त रूप में, जिसमें शबरी के जूठे बेर या फल का कोई संकेत नहीं मिलता है। इसी क्रम में पद्म पुराण (6, 269, 265-468) तथा तत्त्व संग्रह रामायण (3, 17) में भी जो शबरी प्रसङ्ग उपलब्ध है उसमें जूठे बेर या फलों की कोई चर्चा नहीं है।

संस्कृत वाङ्मय के प्रमुख रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों के विहङ्गमावलोकन के उपरान्त हिन्दी रामकथा साहित्य का अवलोकन अत्यावश्यक जान पड़ता है। इस सन्दर्भ में हिन्दी रामकथा साहित्य के शिरोमणि ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदास रचित, रामचरितमानस के सूक्ष्मावलोकन पर पता चलता है कि इसमें भी शबरी के जूठे बेर या फल का कोई संकेत नहीं है। प्रायः लोगों में यह धारणा है कि वाल्मीकि रामायण या रामचरितमानस में इस बात का उल्लेख अवश्य होगा कि शबरी ने राम को जूठे बेर या फल खिलाये थे, किन्तु वाल्मीकि रामायण की ही भांति रामचरित मानस के भी इस सन्दर्भ में केवल यही उल्लिखित है कि

कंद मूल फल सुरस अति, दिये राम कहु आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये, बारम्बार बखानि।।[5]

इस प्रकार रामचरितमानस की ही भांति रामगीतावली,[6] तथा रामचन्द्रिका[7] सरीखे अन्य हिन्दी रामकथा साहित्य में भी जो शबरी प्रसङ्ग उपलब्ध है उसमें कहीं भी जूठे बेर या फल की कोई चर्चा नहीं है।

उपर्युक्त संस्कृत एवं हिन्दी रामकथा साहित्य के सम्पूर्ण शबरी प्रसङ्गों का सूक्ष्मावलोकन करने पर पुनः वह प्रश्न वहीं बना रह गया कि वास्तव में शबरी के जूठे बेर या फल की चर्चा संस्कृत, हिन्दी अथवा अन्य किस ग्रन्थ में किसी स्थल पर की गई है? पुनर्खोज के फलस्वरूप इस सन्दर्भ में संस्कृत रामकथा साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भुशुण्डि रामायण' विशेष द्रष्टव्य है जो अभी शीघ्र ही श्री भगवती प्रसाद सिंह द्वारा प्रकाश में लाया गया है। भुशुण्डि रामायण में वर्णित शबरी प्रसङ्ग इस प्रकार है [8]

पम्पासर से ऋष्यमूक पर्वत जाते हुए राम परमभक्ता शबरी नामक भीलनी के घर गये। रास्ते में मुनियों ने उनका आतिथ्य करना चाहा, किन्तु वे रुके नहीं। शबरी उद्विग्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। उत्कण्ठा से कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती। पदार्पण करते ही उसने दोनों भाइयों का पाद्य अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क आदि से स्वागत किया। राम की सेवा के निमित्त उसने अनेक प्रकार के फल और साग पृथक्-पृथक् दोनों में सजाये थे, उनमें से परीक्षा के लिये उसने कुछ स्वयं चखकर रखे थे। राम ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें खाया। शबरी भक्त-वत्सल के अचिन्त्य अनुग्रह से अभिभूत हो गयी। आराध्यदेव को जूठे फल खिलाने से उसे बड़ी ग्लानि हो गयी। राम ने उसका मनस्ताप दूर करने के लिए कहा 'देवि! तुम तीर्थपावनि हो। आगामी कल्प में तुम मुझे प्रमोदवन में प्राप्त करोगी। तब तक यहीं तप करते हुए भक्तियुक्त शरीर धारण करो।' यह कहकर चलते हुए उसने उन्हें सादर ताम्बूल अर्पित किया। मुनियों को राम का यह आचरण अच्छा नहीं लगा।

वे आपस में कहने लगे। 'आश्चर्य है! राम ने हम यज्ञव्रती मुनियों की उपेक्षा करके मन्दबुद्धि एवं दुराचारिणी भीलनी का आतिथ्य ग्रहण किया। बड़ों की बुद्धि उल्टी है।' इस प्रकार उन लोगों ने शबरी और राम दोनों की जी भर निन्दा की। दैवयोग से इस निराधार आक्षेपजनित पाप का दण्ड उन्हें तत्काल भोगना पड़ा। सारे आश्रमों की यज्ञाग्नि अकस्मात बुझ गई, नदी का जल रक्तमय हो गया। हवन सामग्री कीड़ों से भर गई। इससे अनेक स्नान यज्ञादि कर्म बन्द हो गये। धर्मनाश का भय उपस्थित हो गया।

इसी समय महर्षि अगस्त्य का उधर से आना हुआ। मुनियों ने अपनी दुरवस्था कह सुनायी। अगस्त्य बोले! 'ब्राह्मणो' तुम पापकर्म से तेजोहीन हो गये हो। रामावतार लोक-मङ्गल के लिये हुआ है। वे ही यज्ञात्मा हैं, यज्ञभुक् हैं। अज्ञानवश तुम उन्हें नहीं पहचान सके। उन्हीं की शरण में जाने से इस कष्ट से निवृत्ति मिल सकती है।

अगस्त्य के निर्देशानुकूल राम को ढूँढ़ते हुए मुनि लोग ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उनकी दोनों भाइयों से भेंट हुई। मुनियों ने अत्यन्त आर्त्त स्वर में क्षमा-याचना की। राम ने कहा मेरे लिये भक्तों का अपमान असत्य है। महायोगिनी शबरी का तुम लोगों ने तिरस्कार किया है। वह सर्वदेव प्रणम्य है। उसी की आराधना करने से तुम्हारा पाप कटेगा। मुनि लोग वहाँ से अगस्त्य के साथ शबरी के घर गये तथा उससे अनुनय-विनयपूर्ण शब्दों में निवेदन किया "माता! ब्राह्मणों का पाप क्षमा करो, अपना पैर धोकर हमारे आश्रम की नदी को पवित्र करो।" शबरी बोली "ब्राह्मण देव! मैं आपके जूठन योग्य भी नहीं हूँ।" यह कहकर वह महर्षि अगस्त्य के पैरों पर गिर पड़ी। अगस्त्य के अनुरोध से वह मुनियों के आश्रम पर गई। उसके आगमन मात्र से सारा आश्रम पवित्र हो गया। मुनियों का धर्म कार्य पूर्ववत चलने लगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत रामकथा साहित्य के अन्तर्गत प्रथम एवं अन्तिम बार शबरी के जूठे बेर का प्रसङ्ग भुशुण्डि रामायण से मिलता है। क्योंकि इसके बाद भी अन्य किसी संस्कृत ग्रन्थ में शबरी के जूठे बेर या फल का प्रसङ्ग दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ हिन्दी साहित्य तथा अन्य कुछ भाषाओं में यह तथ्य किसी-न-किसी रूप में थोड़ा-बहुत अवश्य ही प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ श्रीमती माया देवी शर्मा रचित 'शबरी' खण्ड काव्य में भुशुण्डि रामायण से मिलता-जुलता शबरी प्रसङ्ग उपलब्ध है। इसके अन्तर्गत शबरी के जूठे बेर (फल) के द्वारा राम के आतिथ्य आदि वर्णन के साथ-ही-साथ मुनियों द्वारा राम से क्रोध करना तथा उसके दुष्परिणाम आदि का भी उल्लेख है। इस संदर्भ में यह रोचक प्रसङ्ग उल्लेखनीय है।[9]

ये बेर हमारे खाकर, प्रभु ने हमको अपनाया।
इस वन्य बेर ने जीती राजन्य नगर की माया।

पर उनका दम्भ मिटाकर, पहले शबरी के घर जा।
आदर्श नया ही रक्खा, राघव ने वन्य प्रजा का।।
अब अमृत प्रभा-सी बरसी, भीलनी और भीलों पर।
पड़ गया घड़ों भर पानी, उन जप-तप गर्वीलों पर।।

उपर्युक्त प्रसङ्ग तो चूंकि भुशुण्डिरामायण के अनुसार अक्षरशः था, इसलिये इसका उल्लेख इस स्थल पर किया गया, नहीं तो शबरी के जूठे फलों या बेर के विषय में इससे बहुत पहले तथा संभवतः हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम सूरदासजी ने ही किया है। सूरदासजी ने शबरी के फलों के विषय में लिखा है, कि ये जूठे थे (सभा संस्करण, 511)।[10] बलरामदास को रामायण से पता चलता है कि शबरी अपने पति के साथ राम, लक्ष्मण से भेंट करती है तथा इसमें इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि राम वे फल नहीं खाते जिनमें शबरी के दाँतों के निशान नहीं थे।[11] इसी प्रकार आनन्दतनयकृत मराठी 'शबरिख्यान' (18वीं श.) में भी इस बात का उल्लेख है कि शबरी ने राम को जूठे बेर या फल खिलाये थे।[12]

भक्तमाल की प्रियादास कृत टीका[13] (19वीं श. ई.) में वर्णित शबरी प्रसङ्ग के अंतर्गत भी जूठे बेर का उल्लेख है। इसके अनुसार शबरी ऋषियों की सेवा करने को उत्कट अभिलाषा से प्रेरित होकर रात के पिछले पहर को उनके आश्रम में प्रवेश किया करती थी, वह ऋषियों के स्नान करने जाने का मार्ग झाड़-बुहार कर साफ करती थी तथा उनके लिए लकड़ियाँ भी लाया करती थी। मतङ्ग के मन में यह जानने की इच्छा हुई कि कौन यह सब करता रहता है, अतः उनके शिष्यों ने रात में जगकर शबरी को मतङ्ग के सामने उपस्थित किया, उन्होंने शबरी को राम भक्ति की दीक्षा देकर उसे आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। बाद में परलोक जाने के पूर्व मतङ्ग ने शबरी को आश्वासन दिया कि वह राम के दर्शन करेगी। किसी दिन शबरी ने अनजाने ही किसी ऋषि का स्पर्श किया और ऋषि ने उस पर अपना क्रोध प्रकट किया। फलस्वरूप जब वह ऋषि स्नान करने के लिए सरोवर के पास पहुँचा तो उसने देखा कि वह रक्त तथा कृमियों से भरा हुआ है। बहुत दिन बीत जाने पर राम वहाँ पहुँचे तथा शबरी के यहाँ जाकर उसका आतिथ्य-सत्कार ग्रहण किया तथा उसके जूठे फल खाये। ऋषि आकर राम से सरोवर को स्वच्छ करने का निवेदन करने लगे। इस पर राम ने सरोवर के अपवित्र हो जाने का रहस्य प्रकट किया तथा कहा कि वह शबरी के स्पर्श से फिर स्वच्छ हो जायेगा। रघुराज सिंह रचित रसिकावली[14] में भी उपर्युक्त प्रकार से ही शबरी के जूठे बेर का उल्लेख मिलता है।

शबरी प्रसङ्ग तथा उसके जूठे बेर या फलों की बात आदिवासियों में अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय है। मध्य भारत के कोल अपने को शबरी का वंशज मानते हैं।

उनमें प्रचलित दन्तकथा इस प्रकार है।[15] वनवास के समय किसी दिन शबरी-राम-सीता-लक्ष्मण की भेंट हुई। तीनों भूखे थे और शबरी ने उनको जङ्गली बेर खिलाकर तृप्त किया। इसके बाद वह प्रतिदिन अपने अतिथियों के लिए बेर बटोरने जाती थी। एक दिन अन्यमनस्क होकर प्रत्येक फल का थोड़ा-सा अंश खाकर अपनी टोकरी में रख लिया। घर पहुँचकर उसे पता चला कि मैंने यह क्या किया है और वह राम को जूठे बेर देने में हिचकती है। राम ने अनुरोध किया और वह सीता के साथ वे फल खाने लगे। लक्ष्मण ने एक आदिवासी का जूठा भोजन स्पर्श करना अस्वीकार कर दिया। इस पर एक बाण ने लक्ष्मण को आहत कर दिया और वह तब तक अस्वस्थ रहे, जब तक कि उन्होंने अपना मन नहीं बदल दिया। शबरी के घर से प्रस्थान करते समय राम ने उसको वर स्वरूप राज्य अथवा परिवार चुनने को कहा। शबरी ने परिवार चुन लिया और राम ने उसको आश्वासन दिया कि उसके असंख्य वंशजों को कभी भी भोजन अथवा कपड़े का अभाव नहीं होगा।

उक्त संदर्भ में एक उल्लिखित तथ्य और भी उद्‌घाटित करना अत्यावश्यक जान पड़ता है कि संस्कृत साहित्य के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रेमपत्तनम्' में शबरी द्वारा श्रीरामजी को जूठे बेर खिलाने का सुस्पष्ट वर्णन मिलता है

प्रेम्णावशिष्टमुच्छिष्ट भुक्त्वा फलचतुष्टयम्।
कृता रामेण भक्तानां शबरी कबरी मणिः ॥

इसी श्लोक का भावानुवाद करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध महाकवि सूरदास जी अपने ग्रंथ सूरसागर में लिखते हैं **जूठे फल शबरी के खाये, बहुविध मधुर स्वाद बतलाये।**

यहाँ यह भी उल्लेखनीय हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने यद्यपि स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा है कि श्रीराम ने शबरी के जूठे फल खाये किन्तु श्लेष अलंकार के माध्यम से यदि देखने का प्रयास किया जाय तो शबरी द्वारा चखे हुए फलों का ही भक्षण श्रीराम ने किया था

खाए सुरस अति कंद मूल फल राम कहँ आनि दिए।
प्रभु बारम्बार बखानि प्रेम सहित फल खाए ॥

यहाँ प्रथम 'खाए' शब्द 'कुदन्ती' प्रत्यय से सिद्ध हुआ है और द्वितीय 'हिङन्ती' प्रत्यय से। प्रथम का अर्थ है 'खाए हुए' तथा दूसरे का अर्थ है 'खाय'। यहाँ सर्वाधिक प्रमुख है शबरी का भाव, क्योंकि शबरी ने भगवान के लिए जिन फलों का संग्रह किया उनमें अत्यन्त सुमधुर फल ही चयन करने के लिए पूर्व में ही उसने उसका स्वाद चख लिया था। इसीलिए तो प्रभु श्रीराम ने शबरी के भक्ति भाव का आस्वादन करते हुए जूठे फलों का भी आस्वादन किया।

रामायण काकविन तथा रामकियेन जैसे कुछ विदेशी रामकथा ग्रन्थों में शबरी प्रसङ्ग तो उपलब्ध है, किन्तु उनमें उसके जूठे बेर या फल खाने का कोई संकेत नहीं मिलता है।[16]

उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि शबरी प्रसङ्ग से सम्बन्धित यह विशेष तथ्य (शबरी ने राम को जूठे बेर या फल प्रदान किये थे।) रामकथा के आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण अथवा रामचरितमानस जैसे महनीय ग्रन्थों में स्पष्ट रुपेण नहीं वर्णित है। सम्भव है कि इसका विकास या परिवर्धन भुशुण्डि रामायण तथा सूरदास के शबरी प्रसङ्ग से हुआ हो। कालान्तर में लगभग 18वीं शताब्दी आते-आते हिन्दी साहित्य तथा अन्यान्य भारतीय भाषाओं में व्यापक रूप से शबरी के जूठे बेर या फल की चर्चा की गयी। इसी के फलस्वरूप आज यह विस्तृत रूप से प्रसृत होती हुई भारतीय रामकथा प्रेमियों में अनायास ही चर्चित है कि शबरी ने राम को जो बेर या फल खिलाये थे वह जूठे थे।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड, 74/71, 72
2. आनन्द रामायण, सारकांड, सर्ग 7, श्लोक 162
3. आनन्द रामायण, सारकांड, सर्ग 7, श्लोक 165
4. आध्यात्म रामायण, अरण्यकांड, सर्ग 10, श्लोक 8-9
5. रामचरित मानस, आरण्य कांड 34
6. राम गीतावली 17, 1-8
7. रामचन्द्रिका 12, 43-46
8. भुशुण्डि रामायण, पूर्वखंड कथावस्तु भूमिका, पृ. सं. 17, 18, सम्पादक भगवती प्रसाद सिंह, वि. वि. प्रकाशन वाराणसी।
9. तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य डॉ. रामलखन पांडेय, पृ. 50, 51, 52 एवं 'शबरी' श्रीमती मायादेवी शर्मा, पृ. 65-95।
10. रामकथा कामिल बुल्के, पृ. 437।
11. वही, पृ. 437।
12. वही, पृ. 437।
13. वही, पृ. 437।
14. वही, पृ. 437।
15. वही, पृ. 438।
16. वही, पृ. 438।

8

वाल्मीकि रामायण में स्त्री-शिक्षा

शिक्षा मानवीय चेतना का वह ज्योतिर्मय सुसंस्कृत पक्ष है जिससे उसके व्यकितत्व का बहुमुखी विकास होता है। शिक्षा मानव के बौद्धिक तथा सामाजिक विकास में आजन्म से चली आ रही एक प्रक्रिया है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ सीखता है, करता है, अपनाता है और अनुभव करता है, वह शिक्षा ही है। शिक्षा के सहारे ही वह समृद्धि को प्राप्त करता है तथा उसके जीवन में पूर्णता आती है। शिक्षा के माध्यम से ही संसार की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। शिक्षा के माध्यम से ही नये विचारों का जन्म होता है, विचार क्रिया के रूप में परिवर्तित होते हैं, और इस प्रकार दिन-प्रतिदिन एक अच्छे समाज का निर्माण होता है। यदि शिक्षा का अभाव हो जाय या इसका स्तर निम्न हो जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि समाज की प्रगति रुक जाये। दूसरे शब्दों में शिक्षा ही मानव समाज के बहुमुखी प्रगति की आधार-शिला है।

मानव समाज स्त्री एवं पुरुष की समष्टि से ही निर्मित है। अतः इसके सर्वतोन्मुखी विकास एवं प्रगति के लिए दोनों का समुचित रूप से शिक्षित होना परमावश्यक है। किन्तु भारतीय समाज में पुरुषों की प्रधानता होने के कारण अन्यान्य क्षेत्रों की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी उसी का वर्चस्व रहा है। स्त्री-शिक्षा समाज में उतनी समादृत नहीं थी जितनी पुरुष-शिक्षा। इसके पीछे सामाजिक रूढ़ियों (पर्दा-प्रथा, निर्बलता आदि) तथा शिक्षार्जन हेतु गुरु के पास आश्रम में जाना, वहां लम्बी अवधि तक रहना जैसी अन्यान्य व्यावहारिक कठिनाइयां भी थीं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि स्त्रियां शिक्षार्जन करती ही नहीं थीं, करती थीं केवल समाज के सम्भ्रान्त एवं समर्थ परिवारों की ही स्त्रियां यथा आज भी समाज के निर्बल वर्ग के पुरुष येन-केन-प्रकारेण थोड़ी-बहुत शिक्षा भले ही ग्रहण कर लें, किन्तु उनके घरों की स्त्रियां शिक्षा क्षेत्र से बहुत दूर हैं। अब चूंकि शिक्षा और संस्कृति परस्पर अन्योन्याश्रित

हैं तथा वाल्मीकि रामायण भारतीय संस्कृति का प्रतीक ग्रन्थ है। अतः महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य में (रामायण में) स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर सम्प्रति यथासाध्य विचार किया जा रहा है।

वस्तुतः वाल्मीकि रामायण में भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा का जैसा समुज्ज्वल सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्र अंङ्कित हुआ है वैसा संसार के किसी महाकाव्य में वहां की संस्कृति का चित्र संभवतः ही उतरा हो। रामायण की कथा से भारत के जनसाधारण, आबाल वृद्ध-वनिता केवल विविध प्रकार की शिक्षा ही नहीं ग्रहण करते, आनन्द भी पाते हैं। केवल उसे शिरोधार्य ही नहीं करते हृदय में भी रखते हैं, और वह उनका केवल धर्मशास्त्र तथा काव्य ग्रन्थ ही नहीं है, अपितु एक विशाल शिक्षा ग्रन्थ भी है।

वाल्मीकि रामायण के साङ्गोपाङ्ग अनुशीलन से पता चलता है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ में स्पष्ट रूपेण स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित एक भी स्थल नहीं है। हां! महाकाव्य के अन्तर्गत वर्णित कुछ प्रसङ्गों के आधार पर यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि इस समय उच्चकुल की स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। यद्यपि कन्याओं के लिए विवाह अनिवार्य था। अतः यौवनावस्था में पदार्पण करते-करते उनका विवाह कर दिया जाता था। प्रायः कन्याओं की शिक्षा 12 वर्ष तक समाप्त हो जाती थी। कुछ ही कन्याएँ ऐसी होती थीं जो ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं और विद्याध्ययन करती रहती थीं। किन्तु ऐसी कन्याओं की संख्या अत्यल्प थी। इस प्रकार शिक्षा की दृष्टि से कन्याओं को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं

1. कुछ अवधि तक शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याएँ।
2. आजीवन शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याएँ।

धर्मशास्त्रों में प्रथम श्रेणी की कन्याओं को 'सद्योवधू' तथा दूसरी श्रेणी वालों को 'ब्रह्मवादिनी' की संज्ञा दी गयी है। सद्योवधू को व्यावहारिक नैतिक तथा धार्मिक, जैसे सन्ध्यावन्दन और यज्ञादि से सम्बन्धित वैदिक मन्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। कौशल्या, तारा, सीता आदि इसी श्रेणी में आती थी। ब्रह्मवादिनी कन्याएँ आजन्म अविवाहित रहती थीं और आश्रमों में निवास करती हुई स्वाध्याय, यज्ञ एवं तपादि में संलग्न रहती थीं स्वयंप्रभा एवं वेदवती आदि को हम ब्रह्मवादिनी कह सकते हैं।

सद्योवधू की शिक्षा किस प्रकार होती थी, इसका भी स्पष्ट उल्लेख कहीं भी रामायण में नहीं प्राप्त होता। विदित ही है कि रामायण काल में आश्रमों में शिक्षा प्रदान की जाती थी, अतः विशेष अध्ययन के लिये स्त्रियां भी आश्रमों में जाकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। मेरुसावर्णि ऋषि की पुत्री स्वयंप्रभा ऋक्षबिल नामक गिरिदुर्ग के

समीप अपने पिता के साथ आश्रमवास करती थी। स्वयंप्रभा अविवाहित थी और आश्रम में तापसी जैसा जीवन व्यतीत करती थी। उसका तपोमय तेज इतना अधिक था कि वृद्ध होने पर भी वह 'अनिंदितलोचना' थी। चीर और मृगछाला धारण करती हुई, 'सर्वज्ञा' 'नियताहारा' 'सर्वभूतहितेरता' वह तपस्विनी सदैव धर्माचरण में संलग्न रहती थी। उसने सभी करणीय कर्मों को पूर्ण कर लिया था। सीतान्वेषण करते हुए हनुमान वानरों सहित इस धर्मस्वरूपा तपस्विनी से मिलते हैं और स्वयंप्रभा उन वानरों का आदरपूर्वक आतिथ्य करती है।[1] इसी आश्रम पर हेमा नाम की अप्सरा रहती थी जिस पर बाद में मय नामक दानव आसक्त हो जाता है। यह हेमा 'नृत्यगीत विशारदा' थी। इससे ऐसा प्रकट होता है कि इस आश्रम में ललित कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध रहा होगा।[2] पुनश्च अन्य सभी विधाओं की शिक्षा भी यहां अवश्य ही दी जाती रही होगी, क्योंकि स्वयंप्रभा के लिये प्रयुक्त 'सर्वज्ञा' शब्द से यह ध्वनित होता है कि वह सभी विधाओं की जानकार थी।

इसी प्रकार रामायण के उत्तरकांड में वेदवती को 'ब्रह्मवादिनी' स्त्री कहा गया है। वह साक्षात 'वाङ्मयी' थी। पिता के देहावसान के अनन्तर वह हिमालय के निकट आश्रम में रहती थीं तथा अहर्निश व्रतचर्या में संलग्न रहती थी। उस आश्रम में रहती हुई कृष्ण-मृगचर्म धारण कर देवताओं के सदृश्य देदीप्यमान ऋषियों की भांति जीवन व्यतीत करती थी।[3] इस प्रसङ्ग से यह निश्चय होता है कि वेदवती को अपने आरम्भिक जीवन में पिता से वेदों एवं याज्ञिक कर्मकांडों की उच्च शिक्षा मिली थी और बाद में उसने ऋषियों के मार्ग का अनुसरण किया। अहिल्या भी गौतम ऋषि के आश्रम में 'न्यासभूता' थी और शिक्षा प्राप्त करके अपने घर चली जाती हैं। बाद में इसके चरित्र, तप एवं तेज से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने अहल्या को गौतम को ही प्रदान कर दिया।[4] इस प्रकार गौतम ऋषि के आश्रम में भी स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी तथा दूर-दूर से कन्याएँ आकर वहां शिक्षा प्राप्त करती थीं।

मतङ्गाश्रम में शबर जाति की एक दीर्घजीवी तपस्विनी रहती थी जिसने आश्रम में गुरुओं की बहुत सेवा की थी। वह जाति से वर्णबाह्य होने पर भी विज्ञान से बहिष्कृत नहीं थी विज्ञान नित्यमाबहिष्कृता। राम दर्शन के पश्चात् वह वृद्धा शबरी-आश्रम-वेष चीर एवं कृष्णाजिन से सज्जित हो अग्नि में अपने को भस्मीभूत कर देती है और पुण्यात्मक महर्षियों द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्यशाली लोक को प्राप्त करती है।[5] इस प्रसङ्ग से यह स्पष्ट होता है कि मतङ्गाश्रम में मतङ्ग ऋषि के अतिरिक्त भी अन्य ऋषि गुरु थे। साथ ही यदि शूद्रकुलोत्पन्न शबरी उस आश्रम में रहकर व्रत-तप नियम एवं शिक्षार्जन या ज्ञानार्जन करती थी तो अन्य स्त्रियां भी

वहां शिक्षार्जन करती रही होंगी।

महर्षि वाल्मीकि का आश्रम भी शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र थी, जहां स्त्रियों के निवास करने का भी प्रबन्ध था। राम द्वारा परित्यक्ता सीता उसी आश्रम में आकर अपने जीवन के अवशेष दिन व्यतीत करती हैं तथा समय-समय पर ऋषि के सदुपदेश द्वारा विकार दूर करते हुए अपने मनोभावों को पुष्ट बनाती हैं। सीता ने बाल्यावस्था में अवश्य ही उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, तभी तो वह हनुमान द्वारा अंगूठी प्राप्त कर उसमें अङ्कित राम नाम को आसानी से पढ़ लेती हैं।[6] अशोक वाटिका में पहुँचकर हनुमान सीता से वार्तालाप करने से पूर्व भाषा सम्बन्धी विषय पर जो विचार करते हैं उससे सिद्ध होता है कि उन्हें (सीता को) उस समय प्रचलित 'मानुषी द्विजाति' भाषा का पूर्ण ज्ञान था। इस प्रसङ्ग में हनुमान विचार करते हुए कहते हैं, कि वानर होकर भी मैं मानवोचित संस्कृत भाषा में बोलूँगा **वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।** परन्तु ऐसा करने में एक बाधा है, यदि मैं द्विज की भांति संस्कृतवाणी का प्रयोग करूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायेंगी। ऐसी दशा में अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे अयोध्या के आस-पास की साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी को मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता।[7] इससे यह स्पष्ट होता है कि सीता को संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं की भी शिक्षा प्राप्त थी।

सीता को धार्मिक कृत्यों की भी शिक्षा भली-भांति मिली थी। विवाह के पश्चात् सीता पति के साथ सभी कृत्यों को सम्पन्न करती हैं। पातिव्रत धर्म की भी शिक्षा उन्हें सम्यक् रूप से प्राप्त थी। राम के वनगमन के समय वह बार-बार पातिव्रत धर्म का उल्लेख करती हैं और प्रत्येक स्थिति में उनके साथ वन जाना चाहती हैं। विवाहोपरान्त अपने श्वश्रुजनों से भी उन्हें पत्नी विषयक उच्चशिक्षा प्राप्त हुई थी। रामायण में सावित्री, रोहिणी, दमयन्ती, शची, अरुंधती, लोपामुद्रा, सुकन्या और केशिनी आदि पतिपरायणा स्त्रियों से उनके पातिव्रत धर्म की शिक्षा का पता चलता है।

इस प्रकार सीता निश्चय ही पूर्ण शिक्षिता एवं विदुषी महिला थी। रावण उन्हें 'पण्डित-मानिनी' कहकर सम्बोधित करता है। वह रावण से जिस शालीनता के साथ सम्भाषण करती हैं, उससे उनके उच्च शिक्षित होने का प्रमाण मिलता है हे रावण! जिस प्रकार वेद आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मण की सम्पदा होती है, उसी प्रकार मैं वसुधाधिपति राम की धर्मपत्नी हूं।[8] पुनः हनुमान से कहती हैं जिस प्रकार ब्राह्मण शूद्र को मन्त्र ज्ञान नहीं दे सकता, उसी प्रकार मैं भी रावण को अपना अनुराग नहीं

दे सकती। इसी प्रकार हनुमान जी के वचनों को सुनकर सीता कहती हैं मैं वाणी के स्वामी बृहस्पति को, वज्रधारी इन्द्र को, स्वयम्भू ब्रह्मा जी को तथा वाणी के अधिष्ठातृ देवता अग्नि को भी नमस्कार करती हूं। इस वनवासी वानर ने मेरे सामने जो कुछ कहा वह सब सत्य हो, उसमें कुछ भी अन्यथा न हो। उपर्युक्त सभी वाक्य सीताजी की उच्च शिक्षा एवं विद्वत्ता के सूचक हैं।[9]

सीता को काव्य भाषा का भी ज्ञान था। अशोक वाटिका में हनुमान राम का परिचय जब काव्यमयी, सुपुष्ट एवं सुष्ठु भाषा में देना प्रारम्भ करते हैं तो सीता उसका अर्थ समझ लेती हैं। इस प्रकार सीता ने अपने वाल्यावस्था में ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी, बाद में सासुओं के द्वारा शिक्षा प्राप्त करती हैं। वन में पति के साथ भी उन्हें विभिन्न प्रकार का भौगोलिक एवं व्यावहारिक ज्ञान मिला। पति द्वारा परित्यक्ता हो जाने पर वाल्मीकि के आश्रम में भी उनके सदुपदेश से किसी-न-किसी रूप में शिक्षार्जन करती रहीं। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत वर्णित सुमित्रा, कैकेयी, तारा तथा मन्दोदरी आदि नारियों के नीति एवं शास्त्रसम्मत संभाषणों से उनकी विद्वता एवं शिक्षार्जन का पूर्ण ज्ञान होता है। उपर्युक्त प्रकरणों से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रामायण काल में शिक्षा की व्यवस्था आश्रमों में थी, जहां तपोनिष्ठ ज्ञानी महर्षियों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। तत्कालीन स्त्रियां या तो इन आश्रमों में जाकर शिक्षार्जन करती थीं या विद्वान पिता के संरक्षण में घर पर ही संपूर्ण विद्याओं की शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस संदर्भ में जो महत्वपूर्ण तथ्य है, वह यह कि इस काल में प्रायः उच्च कुलोत्पन्न स्त्रियां ही शिक्षा ग्रहण करती थीं सर्वमान्य या निम्नवर्गीय स्त्रियां नहीं।

संदर्भ

1. वा. रा., 4/50/2, सम्पूर्ण सर्ग
2. वा. रा., 7/17/1 4, 8, 9
3. वा. रा., 7/30/21 23
4. वा. रा., 7/30/21 23
5. वा. रा., 1/3/73
6. वा. रा., 5/35/2 5
7. वा. रा., 5/30/17, 18, 19
8. वा. रा., 5/9/15
9. वा. रा., 5/26/5

9

श्रीराम के जन्म लेने का कारण

भगवान श्रीराम एवं रामकथा में भक्ति तथा अनुराग रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रायः इस तथ्य से सुपरिचित ही है कि राम के जन्म का प्रमुख उद्देश्य रावण वध था। इसी तथ्य की पुष्टि भी प्रायः सम्पूर्ण रामकथा वाङ्मय में भलीभांति की गयी है। किन्तु इस विषय में ज्ञातव्य है कि प्रारम्भ में तो श्रीराम के जन्म का कारण रावण वध ही माना गया परन्तु कालान्तर में कुछ परवर्ती ग्रन्थों में इसका कारण कोई वरदान या शाप स्वीकार किया गया है। अतः प्रस्तुत सन्दर्भ की समुचित एवं सुस्पष्ट व्याख्या हेतु इस स्थल पर रामकथा ग्रन्थों पर एक दृष्टि डालना अत्यावश्यक प्रतीत होता है।

रामकथा के आदि ग्रन्थ **वाल्मीकि रामायण**[1] में दशरथ ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ करवाते हैं, तदनन्तर वे पुत्रेष्टि यज्ञ भी करते हैं (सर्ग 15, 16)। इसी अवसर पर देवता गन्धर्व सिद्ध, परमर्षि आदि अपना-अपना हविर्भाग ग्रहण करने के उद्देश्य से एकत्र होकर ब्रह्मा से निवेदन करने लगे कि आपके दिये हुए वर के बल पर रावण हम लोगों को तङ्ग करता है **(सर्वान्नो बाधते)**। आप उसके वध का उपाय निकालिये। ब्रह्मा उत्तर देते हैं कि मनुष्य से ही उसका वध सम्भव है। उसी समय विष्णु आ पहुंचे तथा उन्होंने देवताओं का यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि वे दशरथ की सन्तति बनकर रावण का वध करेंगे।

आदि काव्य के ही अनुकरण पर अन्य कई रामकथा ग्रन्थों में भी रामजन्म के इसी हेतु को स्वीकार किया गया है। यथा **अध्यात्मरामायण**[2] में यह वृत्तान्त इस प्रकार है रावण आदि राक्षसों के भार से व्यथित होकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर देवताओं तथा मुनियों के साथ ब्रह्मा की शरण लेती है। इस पर ब्रह्मा सबको लेकर क्षीर समुद्र के तट पर विष्णु के पास आते हैं, उनकी स्तुति करते हैं तथा उनसे निवेदन करते हैं कि वह मनुष्य का रूप धारण करके देवशत्रु का वध करें। विष्णु कश्यप को प्रदत्त वर का उल्लेख करते हुए लक्ष्मी एवं अंशों सहित अवतार लेने की प्रतिज्ञा करते हैं।

महाभारत के (रामोपाख्यान)[3] के अनुसार भी तीनों लोकों को रुला देने वाले रावण से संत्रस्त एवं कष्ट पाये हुए ब्रह्मर्षि देवर्षि तथा सिद्धगण अग्निदेव को आगे करके ब्रह्माजी की शरण में गये। निवेदन करते हुए बोले   भगवन्! आपने वर देकर महाबली रावण को अवध्य कर दिया। वह संसार की समस्त प्रजा को अनेक प्रकार से सता रहा है। हमारी रक्षा कीजिये! ब्रह्मा जी ने कहा   अग्ने! देवता या असुर उसे युद्ध में नहीं जीत सकते। उसके विनाश के लिये जो आवश्यक कार्य था वह कर दिया है। अब सब प्रकार से उस दुष्ट का दमन हो जाएगा। उस राक्षस के निग्रह के लिये मैंने चतुर्भुज भगवान विष्णु से अनुरोध किया था। मेरी प्रार्थना से वे भगवान भूतल पर अवतार ले चुके हैं। वे योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं। अतः वे ही रावण के दमन का कार्य करेंगे

तदर्थमवसीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः।
विष्णुः प्रहरता श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति।।

भुशुण्डि रामायण[4] के अनुसार भी रावण के नेतृत्व में राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचारों से तीनों लोकों के निवासी त्राहि-त्राहि करने लगे, तब आकाशवाणी हुई   सारस्वत कल्प के त्रेता युग में अंशों सहित मैं दशरथ पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारूंगा। इस विधान को पूरा करने के लिये मेरे स्वांश-सहित देवगण भी पृथ्वी पर जन्म धारण करेंगे

पुरा दशास्यमुख्येषु राक्षसेषु जगत्त्रयम्।
व्याकुलीकृतमत्यर्थं तदा विधिरचिन्त्यत।।
भुवनस्य क्षयश्चापि नाधुनैव भविष्यति।
कल्पं सारस्वतं नाम युगं त्रेताभिधं तथा।।
प्रायेणेशां विनाशाय द्विजधर्मत्रयी द्रुहाम्।
भविष्यति स्वयं रामः प्रादुर्भूतः क्वचिद् भुवि।।

× × ×

इसी प्रकार **आनन्द रामायण**[5] के प्रारम्भ में ही रावण ब्रह्मा से अपनी मृत्यु का कारण पूछता है। ब्रह्मा ने राम के हाथों भविष्य में रावण की मृत्यु बतायी

तस्मिन्काले तु लङ्कायां विधिं पप्रच्छ रावणः।
कस्मान्ये मरणं ब्रह्मान् तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि।।
तद्रावणं वचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः।
कोसल्यायां दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः।।
चतुर्धापुत्ररूपेण भूत्वा स निहनिष्यति।।

× × ×

आनन्द रामायण के दूसरे सर्ग में भी वर्णित है कि रावण आदि दुष्ट राक्षसों से पीड़ित होकर पृथ्वी माता ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान के पास गयी और उनसे अपनी तथा धर्म की रक्षा के लिये प्रार्थना की।[6] तब विष्णु भगवान ने कहा कि मैं तुम्हारे लिये भूमि पर अवतार लूंगा

एतस्मिन्नन्तरे भूमिर्दशास्यादिप्रपीडिता।
ब्रह्मणा प्रार्थयामास विष्णु सोऽपि तदऽब्रवीत्।।
भूम्यामवतरिष्यामि भवंतु कपयः सुरा।

रङ्गनाथ रामायण[7] के अनुसार भी रावण के अत्याचार से क्षुब्ध देवता लोग ब्रह्माजी से जाकर निवेदन करने लगे कि हमारी रक्षा कीजिये। विचार विमर्श के बाद देवतागण क्षीर सागर में विष्णु के पास जाकर स्तुति करते हुए अपने कष्ट का निवेदन किए। विष्णु जी ने आश्वासन देते हुए कहा कि वे अपने अंशों सहित दशरथ की रानियों के गर्भ से जन्म लेंगे, साथ ही देवताओं को वानर रूप में जन्म लेने का आदेश दिया।

उपर्युक्त रामायण ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ संस्कृत काव्यों एवं नाटकों में भी इसी कारण का उल्लेख मिलता है। **रघुवंश**[8] के अनुसार दशरथ जब पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे, उसी समय रावण के अत्याचार से दुःखी देवतागण क्षीरसागर में विष्णु के पास जाकर अपना कष्ट सुनाने लगे। ब्रह्मा के वर से अवध्य रावण सम्पूर्ण लोकों को संत्रास दे रहा है, हमारी रक्षा कीजिये। भगवान विष्णु ने उन्हें आश्वासन देते हुए विदा किया कि मैं अपने अंशों सहित दशरथ के पुत्र रूप में प्रकट होकर आपके कष्ट को दूर कर दूंगा।

बाल रामायण[9] के अनुसार तो नारद राम और रावण के बीच में संघर्ष उत्पन्न करने के उद्देश्य से पृथ्वी पर उतरते हैं। अयोध्या में पहुँचकर राम को अवतार का उद्देश्य स्मरण दिलाकर उनसे अनुरोध करते हैं कि वह राज्याभिषेक अस्वीकार करें।

बृहद्धर्मपुराण[10] के अनुसार भी विष्णु देवताओं को आश्वासन देते हैं कि मैं दशरथ के पुत्र राम के रूप में अवतार लेकर आप लोगों के कष्ट दूर करूंगा।

पद्मपुराण[11] के अनुसार नारद राजा दशरथ से आकर मिलकर कहते हैं कि सागरबुद्धि नामक एक निमि त्त ज्ञानी ने रावण को बताया है कि दशरथ का पुत्र तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा

नैमित्तेन समादिष्ट तेन सागरबुद्धिना।
भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथिः किल।।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में रावण वध ही विष्णु के राम के रूप में प्रकट होने का कारण बताया गया, परन्तु बाद में श्रीमद्‌भगवदगीता[12] के अनुकरण पर रामावतार के विषय में विष्णु के अवतारों के सामान्य उद्देश्य का भी उल्लेख होने लगा

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

राम भक्ति के पल्लवित होने के पश्चात् इसका भी प्रायः उल्लेख मिलता है कि अपने भक्तों को भवसागर से पार करने अथवा उनको अपना सगुण रूप दिखलाने के उद्देश्य से वे राम रूप में प्रकट हो जाते हैं। रामावतार के रावण वध आदि उपर्युक्त उद्देश्य के अतिरिक्त विष्णु के अवतार धारण करने के कई कारणों का उल्लेख मिलता है। इसके सम्बन्ध में अनेक वरों[13] तथा शापों का विवरण प्राप्त होता है।

वाराह पुराण में इसका उल्लेख किया गया है कि दशरथ ने वशिष्ठ के परामर्श से रामद्वादशी व्रत का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप विष्णु उनकी सन्तान के रूप में प्रकट हुए

तस्य पुत्रः स्वयं जज्ञे रामनामा सुतो बली।
चतुर्द्धा सोऽव्ययो विष्णुः परितुष्टो महामुने।।

पद्मपुराण उत्तरखंड के अनुसार स्वायंभू ने 100 वर्ष तक तपस्या करके विष्णु से यह वर प्राप्त किया था कि विष्णु तीन जन्मों में उनके पुत्र बन जाएँ। तदनुसार स्वायंभू-शतरूपा क्रमशः दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी तथा कलियुग में संभल ग्रामवासी ब्राह्मण हरिगुप्त तथा उनकी पत्नी देवप्रभा के रूप में प्रकट होते हैं। **कृतिवास रामायण** में विष्णु, कश्यप और अदिति की ओर संकेत करते हुए देवताओं से कहते हैं कि दशरथ तथा कौशल्या ने मेरी सेवा की है और मैं यह वर दे चुका हूँ कि मैं तुम्हारे घर जन्म लूंगा।

स्कंदपुराण के दो स्थलों पर दशरथ की इस तपस्या का वर्णन किया गया है। नागर खंड में दशरथ के शनैश्वर से युद्ध करने के बाद इन्द्र उनसे कहते हैं कि **'अनुप्रस्थ गतिर्नास्ति'**। इस पर दशरथ 100 वर्ष तक कार्तिकेयपुर में तप करने जाते हैं। इसके अन्त में जनार्दन प्रकट होते हैं और चार रूप धारण कर दशरथ के पुत्र बनने की प्रतिज्ञा करते हैं।

रामावतार में वर के अतिरिक्त शापों[14] की भी कथाएँ मिलती हैं। यथा **योगवाशिष्ठ** के अनुसार विष्णु ने भृगु की पत्नी का वध किया था और इस

पर भृगु ने शाप दिया कि तुम भी स्त्री के वियोग से व्याकुल हो जाओगे। इस शाप के वशीभूत विष्णु राम के रूप में प्रकट हुए। योगवाशिष्ठ में दो अन्य शापों का भी उल्लेख किया गया है जिनके कारण विष्णु को राम का रूप धारण करना पड़ा। किसी दिन विष्णु ब्रह्मपुरी गये थे, जहां सनत्कुमार को छोड़कर सभी ने उनका स्वागत किया। इस पर विष्णु ने सनत्कुमार को कामातुर बन जाने का शाप दिया तथा प्रत्युत्तर में सनत्कुमार ने विष्णु को अज्ञानी हो जाने का शाप दिया। एक अन्य अवसर पर नृसिंह रूपधारी विष्णु ने देवशर्मा की पत्नी को डराया था, जिससे वह मर गयी। इस पर देवशर्मा ने विष्णु को पत्नी वियोग भोगने का शाप दिया था। **बह्निपुराण** में भृगु शाप रामावतार का कारण माना गया है। **शिव महापुराण** के अनुसार श्रीमती को प्राप्त करने के लिये नारद ने विष्णु के पास जाकर हरि रूप मांगा। विष्णु ने उसे हरि अर्थात् वानर का मुख दिया और स्वयं श्रीमती के स्वयंवर में जाकर उसे प्राप्त किया। उस स्वयंवर में दो शिवगणों ने नारद का उपहास किया और नारद के शाप के कारण ये रावण और कुम्भकरण बन गये। नारद ने विष्णु को यह शाप दिया तुम मनुष्य बनकर वानरों के साथ विरह का दुःख भोगो। **महाभागवत पुराण** के अनुसार नारद का शाप सूर्यवंश में विष्णु के जन्म तथा सीताहरण का कारण माना गया है। शिव महापुराण के आधार पर ही **अद्भुत रामायण**[15] में श्रीराम के जन्म लेने के कारण पर विशद वर्णन प्राप्त होता है। एक बार महर्षि नारद और पर्वत ऋषि राजा अम्बरीष के पास गये। वहाँ उनकी सुलोचना पुत्री श्रीमती को देखकर दोनों ने उसे प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। राजा अम्बरीय धर्मसङ्कट में पड़कर बोले मुनिवर यह कन्या जिसे वरण कर लेगी उसी को ब्याह दूंगा। आप लोग अपने में तय कर लें। दोनों रूपवान होने के लिये विष्णु के पास गये। नारद ने कहा पर्वत का मुख वानर की तरह हो जाय। इसी प्रकार पर्वत ने कहा नारद का मुख गोलायुक्त हो जाय। लेकिन दोनों एक दूसरे के इस रूप को न देख सकें यह शर्त भी रखी गयी। दोनों अम्बरीष के यहां पहुंचे। श्रीमती ने दोनों कुरूप मुनियों के बीच में साक्षात् जनार्दन को माल्यार्पण कर दिया। बाद में जब उन दोनों मुनियों को पता चला कि विष्णु ने छल किया है तो क्रोधपूर्वक शाप देते हुए बोले हे विष्णु! आपने छल से श्रीमती का हरण किया है। जिस मूर्ति से आप उत्पन्न हुए हो उसी मूर्ति से अम्बरीष के कुल में राजा दशरथ के यहां तुम पुत्र रूप से जन्म लो और यह श्रीमती तुम्हारी भार्या होगी जिसे कोई नीच राक्षस छलपूर्वक हरण करेगा। श्रीमती के कारण जैसे हम लोग दुःखी हैं, वैसे ही तुम भी वन में हाहाकार करते फिरोगे। उन ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर जनार्दन कहने लगे अम्बरीष के वंश में अवश्य ही राजा दशरथ का बड़ा पुत्र

राम नाम वाला जन्म लूंगा। भरत मेरी दक्षिण भुजा, शत्रुघ्न बाईं भुजा, शेष लक्ष्मण होंगे, ऋषि का शाप भी अन्यथा न होगा। इस प्रकार हमारे शास्त्रों में भगवान राम के अवतार लेने के विविध कारण वर्णित हैं, किन्तु परमात्मा तो भक्तों के कल्याणार्थ ही अवतार ग्रहण करते हैं।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, आरण्यकांड सर्ग 8-16
2. अध्यात्मरामायण, बालकांड, अध्याय 2
3. रामोपाख्यान 2/266/1-5
4. भुशुण्डि रामायण अध्याय 2, श्लो. सं. 2-10
5. आनन्द रामायण, सारकांड सर्ग 1, 38, 38
6. आनन्द रामायण, सारकांड सर्ग 2, 1-8
7. रङ्गनाथ रामायण (हिन्दी संस्करण) बालकांड, पृ. 56-64
8. रघुवंश सर्ग 10, 5-76
9. बाल रामायण अङ्क 2, अनु. 443
10. बृहद्धर्म पुराण पूर्व खंड अध्याय 18
11. पद्म पुराण (रविषेणाचार्य) प्रथम भाग, पर्व 23 श्लो. 21-27
12. श्रीमद्भगवद् गीता 8/17-18
13. रामकथा-बुल्के, अध्याय 14, पृ. 324-327
14. रामकथा-बुल्के, अध्याय 14, पृ. 327-329
15. अद्भुत रामायण सर्ग 3, 4

10

उपमा तुलसीदासस्य

आदिकाव्य की रचना के बाद रामकथा को आश्रय बनाकर अनेक उपजीव्य ग्रंथों की रचना संस्कृत वाङ्मय में की गयी। पुनश्च संस्कृत के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारतवर्ष की प्रत्येक आंचलिक भाषाओं में रामकथा पर आधारित काव्यों के रचनाधर्मिता की एक अक्षुण्ण परंपरा ही चल पड़ी। इसी परम्परा के ध्वजवाही गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिंदी साहित्य में श्रीराम को नायक बनाकर श्रीरामचरितमानस की रचना की। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी का काव्य एवं उनके नायक प्रभु श्रीराम ने भारतीय वाङ्मय, समाज एवं संस्कृति पर जो अमिट छाप छोड़ी वह अनुपम, अद्वितीय, विलक्षण तथा अद्भुत होने के साथ ही साथ न केवल भारतवर्ष अपितु वैश्विक क्षितिज पर मील का पत्थर बन गयी। आज सम्पूर्ण विश्व में किसी भी ग्रंथ का दो हजार से अधिक भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सका है, किन्तु तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस एक ऐसा ग्रंथ है जिसका दो हजार से अधिक लगभग 2025 भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। यह है गोस्वामी तुलसीदास की श्रीरामचरितमानस एवं उनके प्रभु श्रीराम की लोकप्रियता, विशिष्टता एवं अलौकिकता का प्रथम निदर्शन। किंवा, उक्त वैशिष्ट्य एवं महत्ता को प्रतिपादित करते हुए संस्कृत एवं हिंदी के महाकवि जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य जी ने तो यहाँ तक कह डाला है कि **'यन्नमानसे तन्नमानसे'** अर्थात् आज तक जो कुछ भी किसी मानव मन में स्फुरित हुआ है, हो रहा है अथवा होगा वह सब कुछ श्रीरामचरितमानस में विद्यमान है तथा जो मानसजी में नहीं है वह किसी मानस पटल की विचार सरणि में नहीं है। वस्तुतः श्रीरामचरित मानस के संदर्भ में कही गयी यह उक्ति ही अक्षरशः सत्य एवं मानस जी तथा गोस्वामी जी की महत्ता प्रतिपादित करने में पूर्णरुपेण समर्थ है।

प्रकृत स्थल पर उपमा तुलसीदासस्य विषय को व्याख्यायित करने के लिए सम्पूर्ण तुलसी साहित्य का अनुशीलन करना अत्यावश्यक जान पड़ता किन्तु इससे

विषय विस्तार का भय हो जाता है। अकेले श्रीरामचरितमानस की उपमा तुलसीदासस्य की व्याख्या के लिए प्रभूत, पर्याप्त एवं पुस्तकाकार की सीमा में दृष्टिगोचर होने लगती है। अस्तु श्रीरामचरितमानस के भी कुछ प्रमुख स्थलों को ही विषय विवेचन की दृष्टि से अंगीकार किया जाएगा।

जैसा कि हम सभी सुधीजन इस तथ्य से पूर्णरूपेण अवगत हैं कि भारतीय वाङ्मय में यदि किसी की प्रसिद्धि उपमालंकार एवं उपमा के प्रयोग के विषय में जानी जाती है तो वह संस्कृत साहित्य के कनिष्ठिकाधिष्ठित कवि कुलगुरु कालिदास हैं। वस्तुतः संस्कृत साहित्यकारों एवं सभी समीक्षकों ने उपमा प्रयोग में कालिदास का लोहा मानते हुए ही उपमा प्रयोग में इन्हें सिद्धहत एवं सर्वोपरि सिद्ध करते हुए ही कहा है

उपमा कालिदासस्य गारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघेसन्ति त्रयोगुणाः।।

किन्तु मैं तो यह मानता हूँ कि कालिदास को उपमा प्रयोग में जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है वह संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत तथा संस्कृत समीक्षकों द्वारा। वस्तुतः संस्कृत समीक्षकों ने संस्कृत कवियों की उपमाओं पर दृष्टिपात किया जिसमें कालिदास को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया, उनकी परिधि में हिन्दी साहित्य, गोस्वामी तुलसीदास, तुलसी साहित्य एवं श्रीरामचरितमानस कभी नहीं रहा होगा। यह कालक्रम तथा साहित्येतर की दृष्टि से भी हुआ होगा। यदि संस्कृत रचनाकारों तथा समीक्षकों ने कालान्तर में भी गोस्वामी तुलसीदास जी के उपमा प्रयोग कौशल पर विचार किया होता तो निःसन्देह गोस्वामी तुलसीदास जी की उपमाओं को सिर माथे रखकर नमन करते, अभिभूत होते तथा उपमा कालिदासस्य के स्थान पर उपमा तुलसीदासस्य कहते हुए अपने जीवन की इतिश्री मानते। संभवतः हिन्दी साहित्यकारों एवं समीक्षकों की भी दृष्टि इस ओर आज तक नहीं गयी। जाती भी कैसे? इसके लिए तो आवश्यकता थी एक ऐसी दृष्टि की जो संस्कृत एवं हिन्दी में अव्याहत गति रखते हुए महाकवि एवं महासमीक्षक की दृष्टि रखता हो। इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले तथा भारतीय वाङ्मय को एक नवीन दिशा प्रदान करने वाले महाकवि जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी को प्रस्तुत संदर्भ में नमन करता हूँ जिन्होंने उपमा तुलसीदासस्य जैसा विषय सुझाकर न केवल हिन्दी साहित्य को अपितु तुलसी जयन्ती के पावन पर्व पर गोस्वामी तुलसीदासजी को सच्ची भावांजलि प्रस्तुत की है।

सम्प्रति प्रकृत स्थल पर विषय विवेचना की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीरामचरितमानस के कतिपय स्थलों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास

किया जा रहा है जिसके द्वारा आप सभी सुधीजनों एवं समीक्षकों को गोस्वामी जी की उपमा का वैशिष्ट्य एवं चमत्कृति दृष्टिगोचर होगी। श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड अन्तर्गत मनु शतरूपा द्वारा भगवान श्री सीताराम जी का प्रकट रूप में दर्शन होता है। श्रीराम के दर्शन से गद्‌गद एवं भावविह्वल मनु शतरूपा ने जिस अद्‌भुत स्वरूप का दर्शन किया है उसमें कवि कुलगुरु गोस्वामी तुलसीदास जी ने उपमाओं की झड़ी लगा दी है [1]

दोहा **नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर श्याम।**
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि-कोट शत काम।।
शरद मयंक वदन छवि सीवाँ, चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवां।।
अधर अरुन रद सुन्दर नासा, बिधुकर निकर बिनिंदक हासा।।
नब अंबुज अंबक छवि नीकी, चितवनि ललित भावती जीकी।।
भृकुटि मनोज चाप छवि हारी, तिलक ललाट पटल दुतिकारी।।
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा, कुटिल केश जनु मधुप समाजा।।
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला, पदिक हार भूषन मनिजाला।।
केहरि कंधर चारु जनेऊ, बाहु विभूषन सुन्दर तेऊ।।
करिकर सरिस सुभग भुजदण्डा, कटि निषंग कर शर को दण्डा।।
दोहा **तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।**
नाभि मनोहर लेत जनु, जमुन भँवर छवि छीनि।।
पद राजीव बरनि नहिं जाहीं, मुनि मन मधुप बसहि जिन माहीं।।
बाम भाग शोभति अनुकूला, आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला।।
जासु अंश उपजहिं गुनखानी, अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई, राम बाम दिसि सीता सोई।।
छविसमुद्र हरिरूप विलोकी, एकटक रहे नयन पट रोकी।।
चितवहिं सादर रूप अनूपा, तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा।।
हरष विवश तन दशा भुलानी, परे दंड इव गहिपद पानी।।
सिर परसे प्रभु निजकर कंजा, तुरत उठाये करुनापुंजा।।
दोहा **बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।**
माँगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि।।

उपर्युक्त प्रसंग में प्रभु श्रीराम के नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत नीले कमल, नीली मरकतमणि एवं नीले वर्षाकालीन बादल के समान प्रभु श्रीराम का श्यामल श्री विग्रह, करोड़ों अरबों कामदेव को लज्जित करना, शरदकाल के निष्कलंक पूर्ण चंद्रमा

के समान मुख, शंख के समान कण्ठ, मन्दहास से चन्द्रमा के किरणों के समूह की निन्दा, नवीन कमल के समान नेत्र, भौंह कामदेव के धनुष की शोभा चुराना, घुंघराले केश मानो भौंरों के समूह, सिंह के समान स्कन्ध, भुजाएं हाथी के सूड़ के समान, पीताम्बर तड़ितयुक्त समाज, नाभि यमुना के भँवर के समान आदि सारी उपमाएं गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक ही विषय प्रभु श्रीराम के सन्दर्भ में प्रस्तुत की हैं। एक ही विषय पर इतनी उपमाएँ प्रस्तुत करने में केवल गोस्वामी जी ही समर्थ हैं। कालिदास के द्वारा इतनी उपमाएं एक विषय और एक स्थल पर दर्शनीय नहीं हैं।

बालकाण्ड के अन्तर्गत गोस्वामी जी ने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसात्मक वर्णन करते हुए लोक-परलोक की सम्पूर्ण उपमाओं को हेठा सिद्ध करते हुए अद्भुतोपमा का निदर्शन कराया है [2]

सिय शोभा नहिं जाइ बखानी, जगदंबिका रूप गुन खानी।।
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी।।
सिय वरनिय तेइ उपमा देई, कुकवि कहाइ अजसु को लेई।।
जौं पटतरिअ तीय सम सीया, जग अस जुवति कहाँ कमनीया।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी, रति अति दुखित अतनु पतिजानी।।
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही, कहिय रमा सम किमि वैदेही।।
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई, परम रूपमय कच्छपु सोई।।
शोभा रज मंदरुश्रृंगारु, मथै पानि पंकज निज मारु।।
देहा **एहि विधि उपजे लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।**
तदपि संकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल।।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी को कोई उपमा ही दृष्टिगोचर नहीं हो रही जिससे सीताजी के सौंदर्य का बखान किया जा सके। कालिदास के ग्रंथों में उपमा के संदर्भ में इस प्रकार के प्रयोग का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है।

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी के उपमा प्रयोग का विलक्षण निदर्शन अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत देखा जा सकता है [3]

उभय बीच सिय सोहति कैसे, ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।।
बहुरि कहऊँ जसि मन बसई, जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।
उपमा बहुरि कहऊँ जियँ जोही, जनु बुध बिधु बिच रोहनि सोही।।

गोस्वामी जी की उपमाएँ सार्वकालिक होती हैं एकदेशीय नहीं। वह जीवन के सभी पक्षों एवं अंगों पर आश्रित होती हैं। इसमें समग्रता होती है। जबकि कालिदास ऐसा नहीं कर पाते। कालिदास की उपमा तात्कालिक होती है। यही कारण है कि कालिदास रघुवंश में उपमा प्रयोग के समय जब लिखते हैं [4]

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।।

तो स्पष्ट होता है कि संचरणशील दीपशिखा के आगे गुजरने पर पीछे अंधकार हो जाता है इस प्रकार की उपमा सीता जी को देते हैं, किन्तु ऐसे प्रसंग में गोस्वामी जी के उपमा की चमत्कृति एवं सार्वकालिकता देखते ही बनती है [5]

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई, छविगृह दीपसिखा जनु बरई।।

गोस्वामी जी के सीताजी की सुन्दरता छविगृह के दीपशिखा की तरह है जो सर्वदा एवं सार्वकालिक है तथा सबको निरन्तर चमत्कृत एवं प्रकाशित करती है।

उपमा प्रयोग में प्रवीण गोस्वामी तुलसीदास जी अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत लगभग 21 उपमानों की अप्रस्तुत प्रशंसा करते हुए किस कुशलता से उपमा तुलसीदासस्य को चरितार्थ करने का श्लाघनीय प्रयास किया है, दर्शनीय है [6]

खंजन शुक कपोत मृगमीना, मधुप निकर कोकिला प्रवीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी, कमल शरद शशि अहिभामिनी।।
वरुनप्रास मनोज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्रीफल कनक कदलि, हरषाहीं, नेकुन संक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहिं बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू।।

खंजन पक्षी, तोता, कबूतर, हरिण, मछली, भौरों के समूह, गान में कुशल कोकिला, कुन्द की कली, अनार, बिजली, कमल, शरदकालीन चन्द्रमा, अहिभामिनी अर्थात् नागिन, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, हाथी और सिंह ये सभी अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं अर्थात् तुम्हारी उपस्थिति में ये सब तुम्हारे अंगों से निन्दित हो रहे थे, सब प्रसन्न हो रहे हैं, इनके मन में तनिक भी संकोच या शंका नहीं है। हे जानकी सुनो! तुम्हारे बिना आज ये सब तुम्हारे अंगों के उपमान इतने हर्षित हो चुके हैं मानो उन्हें राज्य मिल गया हो।

गोस्वामी जी उपमा को व्यतिरेक तक पहुँचाने में समर्थ हैं **उपमानाद यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।**[7] के अनुसार बालकाण्ड के अन्तर्गत उपमान चन्द्रमा को सीताजी के मुख सौन्दर्य से किस प्रकार न्यून सिद्ध करते हैं, दर्शनीय है [8]

बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं, सीय बदन सम हिम कर नाहीं।।
जनम सिन्धु पुनि बंधु विषु, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्दु बापुरो रंक।।
घटइ बढ़इ विरहिनि दुखदाई, ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।।
कोक शोकप्रद पंकज द्रोही, अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।
वैदेही मुख पटतर दीन्हे, होइ दोहे बड़ अनुचित कीन्हें।।

यहाँ सीताजी के मुख सौन्दर्य के उपमा प्रयोग में गोस्वामीजी ने उपमानों में ही लगभग 12 दोष दिखा डाले।

इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत तो गोस्वामी जी ने उपमानों की दुर्दशा ही कर डाली। विधाता की सृष्टि में श्रीसीताराम जी के समान कोई स्त्री पुरुष हैं ही नहीं इसीलिए इन्हें वनवास भेज दिया गया [9]

एक कहहिं ए सहज सुहाये, आपु प्रगट भये विधि न बनाए।।
जहँ लगि बेद कही विधि करनी, स्रवन नयन मन गोचर बरनी।।
देखहु खोज भुवन दस चारी, कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी।।
इन्हहिं देखि बिधि मन अनुरागा, पटतर जोग बनावैं लागा।।
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए, तेहिं इरिषा बन आनि दुराए।।

यद्यपि श्रीरामचरितमानस में पदे-पदे गोस्वामी जी का उपमा प्रयोग एवं उसकी विविधता दर्शनीय है जो कालिदास के ग्रंथों में सुलभ नहीं है तथापि यहाँ विषय विस्तार के भय से कुछ ही उपमाओं के प्रयोग का दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है। उपमा प्रयोग की कुशलता, सहजता एवं अधिकार जो गोस्वामी जी में दिखाई पड़ता है वह कालिदास में नहीं। कालिदास जहाँ श्रमपूर्वक उपमा प्रयोग करते हुए लिखते हैं [10] **वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये** वहीं गोस्वामी जी अत्यंत सरलता, सहजता एवं माधुर्य भक्तिपूर्वक कहते हैं [11]

दोहा **गिरा अरथजल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।**
बन्दउँ सीताराम पद, जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न।।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस के कतिपय उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर ही निर्विवाद रूप से तुलसीदास जी के उपमा प्रयोग को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है साथ ही उपमा तुलसीदासस्य की उक्ति भी इनके सन्दर्भ में सर्वाधिक समीचीन सिद्ध होती है। इस स्थल पर यह भी कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भारतीय वाङ्मय में **उपमा कालिदासस्य** के स्थान पर **उपमा तुलसीदासस्य** का स्थान श्रेष्ठ एवं गौरवास्पद है। अंततः एक तथ्य और भी अधिक विचारणीय है कि उपमा कालिदासस्य की अपेक्षा **उपमा तुलसीदासस्य** की उक्ति वरेण्य एवं उपयुक्त क्यों है? वस्तुतः इसका एक प्रमुख कारण है कालिदास के काव्यों में अस्थिर नायकत्व। कालिदास ने अपने विभिन्न काव्यों में विविध नायकों तथा बहुनायकत्व का आश्रय लिया है जिसके कारण एकनिष्ठ नायकत्व के न होने से ही उनकी उपमाओं में वह गुरुता नहीं दिखाई पड़ती, जबकि गोस्वामी तुलसीदास तो अपने सम्पूर्ण साहित्य में **एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास** वाले प्रभु श्रीराम में ही एकनिष्ठ सुस्थिर नायक को स्वीकारा है। इसीलिए तो उनके नायक प्रभु श्रीराम निरवधि गुण निरुपम पुरुष हैं, यही नहीं गोस्वामी जी कहते हैं [12] **निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहें।**

अंततः गोस्वामी जी ने सीताजी की उपमा के लिए जो तथ्य उजागर किया, वह आज तक किसी भी काव्य में किसी कवि द्वारा न लिखा गया, न देखा गया और न ही सुना गया [13]

सब उपमा कबि रहे जुठारी, केहिं पटतरौं विदेहकुमारी।।

वस्तुतः यही है गोस्वामी जी के विषय में उपमा तुलसीदासस्य का प्रतिपादन न जो उपमा कालिदासस्य से बहुत आगे प्रतिष्ठित है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पदलालित्य तथा माघ में तीनों के सन्निवेश की जो बात कही गयी है

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

इसको कलिपावनावतार महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी की कृतियों स्वीकार करते हुए जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्यजी कहते हैं

उपमा तुलसीदासस्य तस्मिन्नेवार्थगौरवम्।
तस्यैव पदलालित्यं तुलसीदासे त्रयोगुणाः।।

संदर्भ

1. श्रीरामचरित मानस, बा. दो. 146, 147
2. मानस, बा. दो. 246-247
3. मानस, अयो. दो. 122, चौ. 3, 4, 5
4. रघुवंशम्, 6/17
5. मानस, बा. दो. 230, चौ. 7
6. मानस, अ. दो. 29ख, चौ. 10, 11, 12, 13, 14
7. काव्यप्रकाशः, उल्लास-10
8. मानस, बा. दो. 236, चौ. 8, दो. 237, चौ. 1, 2, 3
9. मानस, अयो. दो. 119, चौ. 2, 3, 4, 5, 6
10. रघुवंशम्, सर्ग-1, श्लो. 1
11. मानस, बा. दो. 18
12. मानस, उ. दो. 92
13. मानस, बा. दो. 239, चौ. 8

11

लोकचिन्तन और रामायण

आचार्य वामन ने लिखा है **लोकवृत्तं लोकः** अर्थात् सम्पूर्ण लोक या संसार से संबंधित सम्पूर्ण इतिवृत्त लोक है। इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने भी लोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है **लोकः स्थावरजंगात्मकस्य लोकवृत्तस्य** अर्थात् सम्पूर्ण संसार में जड़ चेतन से संबंधित वृत्त। इस प्रकार लोकचिन्तन से अभिप्राय है सम्पूर्ण संसार में जितने भी जड़-चेतन स्वरूप चराचर जीव हैं उनके विषय में सकारात्मक मर्यादित एवं कल्याणकारी चिन्तन। यह लोकचिन्तन न तो किसी साधारण मानव के बस की बात है और न ही इसको व्याख्यायित या निरूपित करने वाले किसी सामान्य काव्य एवं महाकाव्य की, इसके लिये तो आवश्यक है कि किसी महापुरुष, युगपुरुष दैवी सम्पदायुक्त अवतारी महानायक, मर्यादा पुरुषोत्तम या लोकनायक की तथा इस प्रकार का चरितांकन करने वाले किसी अलौकिक एवं दिव्य आर्ष महाकाव्य की। इसीलिए तो महर्षि वाल्मीकि का लोकचिन्तन अभियान किसी ऐसे लोकनायक के अन्वेषण में तत्पर था जो इस लोक के प्रथम काव्य, आदिकाव्य एवं महाकाव्य का नायक बनने में समर्थ हो तथा जिसके समग्र एवं सर्वांगीण चिन्तन से लोककल्याण संभव हो सके। तभी तो महर्षि वाल्मीकि त्रिलोकज्ञ नारद से इस सन्दर्भ में पूछते हैं।[1]

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कःकः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान कोऽनसूयकः।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।
एतदिच्छाम्यह श्रोतुं परं कोतूहलं मे।।

इस लोक में गुणवान, पराक्रमी, धार्मिक, सत्यवादी, कृतज्ञ, दृढव्रत, चरित्रवान सभी का हित चाहने वाला, विद्वान, समर्थ, प्रियदर्शन, मन को अधिकार में रखने वाला, जितक्रोध, क्रान्तिमान, किसी की भी निन्दा न करने वाला, ईर्ष्याहीन और युद्धवीर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के अतिरिक्त कोई नहीं है। इसीलिए नारद से सम्पूर्ण जिज्ञासा की शान्ति के उपरान्त महर्षि वाल्मीकि ने इस लोक में कल्याण के लिए लोकनायक भगवान श्रीराम को नायक, जगज्जननी सीताजी को नायिका तथा श्रीराम कथा को आश्रय बनाकर जिस आदिकाव्य की रचना की वह न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व के आदर्श रूप में स्वीकार्य एवं ग्राह्य है।

इस स्थल पर 'लोकचिन्तन और रामायण' इस विषय को स्पष्ट करने के लिए वाल्मीकि रामायण में चित्रित श्रीराम के लोकचिन्तक, लोकनायक, लोकसंस्कृति संरक्षक एवं मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर विहंगम दृष्टिपात करना आत्यावश्यक है। यद्यपि लोकशब्द स्थावरजंगात्मक होने के कारण अत्यंत व्यापक है। अस्तु विषय विस्तार के भय से लोकसंस्कृति संरक्षक श्रीराम के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से संबंधित वाल्मीकि रामायण के कतिपय प्रसंगों का उद्धरण ही यहाँ अपेक्षित है।

रामचरित व्यक्तिचरित नहीं वह समष्टिचरित, विश्वचरित किंवा लोकचरित है। मनुष्य जाति के सम्पूर्ण इतिहास में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं दिखायी देता जो किसी भी क्षेत्र में श्रीराम से उच्चतर तो क्या उनकी समकक्षता में भी आता हो। देवत्व और मनुष्यत्व का इतना अनुपम सम्मिश्रण संसार में ऐसा कहीं भी नहीं देखा, सुना गया। इस लोक में उन्होंने ऐसे आदर्श स्थापित कर दिए हैं जिनके लिए मनुष्य अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को समर्पित कर देता है। उनके व्यक्तित्व से जो प्रभाव उत्पन्न हुआ है वह संगीत और सौन्दर्य की भाँति अवर्णनीय है, इसीलिए रामायण के संबंध में महायोगी अरविन्द कहते हैं "रामायण अपने ढंग की सर्वाधिक महान और विलक्षण कविता है।" वह नैतिक आदर्शवाद और वीरतापूर्ण अर्द्धदिव्य मानवजीवन का अत्यन्त उदात्त और सुन्दर महाकाव्य है, किन्तु रामायण का यह सम्पूर्ण वैशिष्ट्य आधारित है श्रीराम के वियोग से शोकाभिभूत दशरथ जब कहते हैं बेटा राम तुम मुझे कैद करके अयोध्या के सिंहासन पर बैठ जाओ किन्तु वन जाने का विचार छोड़ दो। तब श्रीराम उत्तर देते हैं मुझे न तो इस राज्य की, न सुख की, न पृथ्वी की, न ही इन सम्पूर्ण भोगों की, न स्वर्ग की और न ही जीवन की इच्छा है। पुरुष शिरोमणे मेरे मन में यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बने रहें, आपका वचन मिथ्या न होने पाये। यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभकर्मों की शपथ लेकर

कहता हूँ। मैं अपने निश्चय के विपरीत कुछ भी नहीं कर सकता।[2] यही नहीं, राम यहाँ तक कहते हैं कि चन्द्रमा से उसकी प्रभा अलग हो जाये, हिमालय हिम का परित्याग कर दे अथवा समुद्र अपनी सीमा को लाँघकर आगे बढ़ जाए किन्तु मैं पिता की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।[3] यह है वाल्मीकि एवं उनके राम तथा रामायण का लोकचिन्तन।

लोकसंस्कृति के संरक्षक एवं लोकचिन्तक राम, राज्य के भूखे नहीं थे। राम गृहकलह नहीं चाहते थे, राज्य क्रान्ति भी नहीं। यदि वे चाहते अथवा अपने अधिकारों के प्रलोभन में फँस जाते तो यह कुछ कठिन नहीं था, क्योंकि जनता भी उनके साथ थी। उनके व्यक्तित्व के असाधारण प्रभाव के कारण ही तो जनता महाराजा दशरथ के जीवन में ही राज्यासन पर अधिष्ठित देखना चाहती थी, किन्तु यह सब नहीं हुआ। उन्होंने राज्यतंत्र को प्रजातंत्र के रूप में परिणत कर दिया। अधिकार की अपेक्षा उनके सामने कर्तव्याचरण अधिक महत्वपूर्ण था। सैन्यबल या अधिकारबल से गद्‌दी पर बैठने वाले राजा राम के प्रति जन-मन में यह आदर और आस्था नहीं होती। औरंगजेब ने शाहजहाँ को सात वर्ष तक कैद करके रखा, अजातशत्रु ने बिन्दुसार को बंदी बनाया था। किन्तु लोकचिन्तक राम ने पिता को सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करने के लिए वनवास सहा।[4] कदाचित् यह राम की कर्तव्यपरायणता ही थी कि जिसके प्रभाव से भरत ने भी माँ की मोहान्धता से मिलने वाले राज्याधिकार को अस्वीकार कर, उनकी अनुपस्थिति में चरणपादुकाओं को ही उनका प्रतीक मानकर एक प्रतिनिधि के रूप में शासन का संचालन किया। सर्वस्व त्यागकर श्रीराम, क्षण भर में वनवासी बन गये। उनके वियोग में केवल पौर एवं जानपद ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी, नदी, सरोवर भी विकल हो उठे, सब श्रीहीन हो गये, सारी अयोध्या ही यह संकल्प लेकर श्रीराम के पीछे चल पड़ी **तद्वनं भाविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति** वह वन ही हमारा राष्ट्र होगा जहाँ राम रहेंगे। यह है रामायण के लोकचिन्तक एवं लोकनायक की दुर्लभ लोकप्रियता राष्ट्र भी जिसके पीछे-पीछे फिरता है।

वस्तुतः लोकचिन्तन की सार्थकता तभी सिद्ध मानी जा सकती है जब लोकनायक के व्यक्तित्व और आचरण में सभी प्रकार के संदेहों से परे इस प्रकार का प्रबल आकर्षण हो जाए जो जनता के दिलों उसके प्रति अडिग विश्वास को जन्म दे सके। रामायण के अन्तर्गत श्रीराम के चरित्र में ऐसा ही आकर्षण दर्शनीय होता है। वे जहाँ भी जाते हैं, वे जिधर से भी निकलते हैं, सारी जनता उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी लगने लगती है। कोल-भील-निषाद् आदि जो हीन दृष्टि से देखे जाते

थे, श्रीराम ने उन्हें अपनाकर उनका सारा सामाजिक कलंक धो दिया। पत्नी और अनुज के साथ पैदल जन-सम्पर्क बढ़ाते हुए पशु-पक्षियों तथा लतावृक्षों से आत्मीय भाव प्रकट करते हुए, बिना किसी भेदभाव के सबसे मिलते और झोपड़ियों तक में आतिथ्य ग्रहण करते हुए श्रीराम, जंगलों में विचरते रहे। यही कारण है कि निषाद, वानर, ऋषि, तपस्वी सभी उनके उद्देश्य के अनुगामी बन जाते हैं।

सच्चा लोकचिन्तन तभी है जब लोकनायक को कार्य व्यवहार, चरित्र और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर प्रजा का हर घटक उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करे। तभी तो भरत जब उन्हें लौटाने के लिए चित्रकूट जाते हैं तब उनके साथ केवल द्विज ही नहीं अपितु चतुर कुम्हार, जुलाहे, शस्त्र व्यवसाई, मोरछल बनाने वाले, मोतियों में छेद करने वाले, रंगरेज, हाथी दाँत का काम करने वाले, चूने की पुताई करने वाले सुनार, धोबी, दर्जी आदि अनेक श्रमजीवियों के दल भी सम्मिलित हो लिए थे।[5] समाज के इन विविध वर्गों के लोगों के लिए हित-चिन्तन, हित-संरक्षण में अहर्निश संलग्न होने के फलस्वरूप ही लोकचिन्तक प्रभु राम के प्रतिय यह भाव दर्शनीय है। यही कारण है कि श्रम और श्रमजीवियों के प्रश्न को लेकर खूनी क्रान्तियों से भरा हुआ आज के राष्ट्रों का इतिहास उस समय नहीं दुहराया गया। वे राजनीतिक एवं सामाजिक उपेक्षा, अत्याचार और अमानवीय व्यवहार से त्रस्त पीड़ित एवं शोषित नहीं थे अपितु उनका भी समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था।

श्रीराम ने संसार के इतिहास में पहली बार सुग्रीव और हनुमान जैसे वानर जाति के योद्धाओं और जटायु जैसे पक्षियों तक को मानवीय मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की। श्रीराम ने भरत से कुशल-मंगल पूछते हुए यह भी प्रश्न किया था कि   भरत, तुम कृषि करने वाले और गोपालन से आजीविका चलाने वाले श्रमिकों को प्यार करते हो कि नहीं   **कच्चित ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः?**

यह वाल्मीकि रामायण के लोकनायक एवं लोकचिन्तक श्रीराम के लोकमर्यादा संरक्षक व्यक्तित्व का प्रभाव ही था कि वे बिना सेना और बिना युद्ध सम्बन्धी तैयारियों के वन में गये तथा वहाँ जन साधारण के न्याय और नैतिक संघर्ष के मूल्यों को जागृत करते हुए भी उन्होंने जन सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया, जिसके कारण जटायु, सुग्रीव, हनुमान और असंख्य वानर तथा बाद में विभीषण तक उनकी सेवा सहायता के लिए आ जुटे। यह कोई वेतनभोगी सैनिकों की सेना नहीं थी अपितु श्रीराम की कुशलता, व्यवहार और गुणों से आकृष्ट होकर ही ये सभी उनके चारों ओर एकत्रित हो गये थे।

लोकचिन्तन और रामायण को विधिवत सुस्पष्ट करने के लिए इस स्थल पर दो-एक उदाहरण और भी देना पर्याप्त होगा कि लोक चिन्तक को उपकारियों के प्रति

किस प्रकार कृतज्ञ होना चाहिए। सीता के अपहरण को रोकने के प्रयत्न में जटायु के प्राणोत्सर्ग पर श्रीराम ने जो मर्मवेदना प्रकट की और जिस भावना से उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया, ऐसा उदाहरण वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त विश्व के अन्य किसी साहित्य में मिलना कठिन है। मृतक मांसभोजी गीध को श्रीराम ने पिता जैसा सम्मान दिया। यही नहीं, वे सीता का पता लगाकर लौटे हुए हनुमान जी के विषय में यहाँ तक कह डालते हैं "आज हनुमान जी ने सीता का पता लगाकर धर्मानुसार मेरी, समस्त रघुवंश की तथा लक्ष्मण की भी रक्षा कर ली है। मैं दीन हूँ, असमर्थ हूँ, मेरे मन में तो यही बात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसे ही प्रिय कार्य नहीं कर सका।"[6] एक स्थल पर उनके उपकारों का स्मरण करते हुए वे आत्मविभोर होकर कह उठते हैं कपि श्रेष्ठ मुझ पर तुम्हारे ऐसे महान उपकार हैं कि उनमें से एक-एक के बदले अपने प्राण दे सकता हूँ। फिर भी शेष उपकारों के लिए मुझे सदा तुम्हारा ऋणी बनकर रहना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुमने जो भी उपकार किये हैं वे सब मेरे शरीर में विलीन हो जायें। मुझे उनका बदला चुकाने का कभी अवसर न मिले, अर्थात् तुम पर कभी कोई विपत्ति आये ही नहीं, क्योंकि मनुष्य विपत्तियों में पड़ने पर प्रत्युपकार का पात्र बनता है।[7] स्वार्थी और कृतघ्न लोगों को श्रीराम के इस कृतज्ञ भाव को हृदयंगम कर आचरण में उतारने की आवश्यकता है। वस्तुतः यही है लोकचिन्तन और लोकमर्यादा की प्रतिष्ठापना।

पुनश्च, वानरों और ऋक्षों को भी गले लगाने वाले सुग्रीव और निषाद के मित्र लोकचिन्तक श्रीराम का चरित्र ही ऐसा है जिसकी सम्पूर्ण कहानी आदिवासियों, वनवासियों और ऐसे लोगों के बीच गुजरी है जो समाज द्वारा बहिष्कृत या उपेक्षित थे। भीलनी के बेरों को भी प्रेमसिक्त मन से खाने वाले तथा जीवन भर उनके मिठास की याद रखने वाले श्रीराम के मधुर सरल स्वभाव और चरित्र को स्मरण करके मन पुलकित हो उठता है **अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम्।**[8]

वस्तुतः लोकचिन्तन की दृष्टि से लोकनायक श्रीराम का चरित्र—व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और मानव जाति का एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। समाज के सामान्य औसत आदमी की जिन्दगी भी किस प्रकार आसान, सरस, श्रेष्ठ, सम्मानित तथा कुंठा, क्षोभ, पीड़ा एवं शोषण से रहित बनाई जा सकती है, बिना थके और बिना भटके हुए साधारण मनुष्य के पुरुषार्थ को जगाकर समाज को एक बहुत बड़ा जेलखाना बनने से कैसे रोका जा सकता है, वे मन-प्राण-संकल्प की सम्पूर्ण शक्ति, आचरण और कार्यों से निरन्तर यही प्रयत्न करते रहे। उनके अनुयायी भी नीति को

स्पष्ट आचरण के स्तर पर लाकर, कथनी और करनी का भेद समाप्त कर एक लक्ष्य और एक मन होकर एकव्रत लेकर और एक अनुशासन में रहकर उनके कार्यों को बल प्रदान करते रहे। यही है लोकचिन्तन और रामायण।

रामायण के संदर्भों से यह स्पष्ट है कि जगज्जयी रावण अपने चरित्र दोष से नष्ट हो गया। उसी के कारण अपनी समस्त कला, संस्कृति और समृद्धि सहित हाहाकारों से भरी हुई लंका भी नष्ट हो गयी। यहाँ भी लोकमर्यादा संरक्षक श्रीराम का उदार चरित उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, जब रावण के मर जाने के बाद उन्होंने उस विभीषण को जो रावण के कुकर्मों के कारण अब भी लज्जा, संकोच और विषाद में डूबा हुआ था, और जो उसे शत्रु समझकर उसके दाह-संस्कार में रुचि नहीं दिखा रहा था, समझाते हुए कहा विभीषण वैर-विरोध मृत्यु तक ही हुआ करते हैं। अब हमारा सम्पूर्ण प्रयोजन समाप्त हो गया। अब वह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी। इसलिए अब तुम इसका संस्कार करो[9]

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

विजित को अपमानित या जलील करना श्रीराम की लोकनीति में नहीं है। अन्यायी शासकों और आक्रामकों की तरह प्रतिशोध की कटु और विद्वेषपूर्ण भावना भी उनके लोकचिन्तन और लोकनीति में आदर नहीं पाती। वैदेशिक इतिहास में किस प्रकार एकीलीज द्वारा हैक्टर की लाश को सवारी के साथ बाँधकर शहर में घसीटा गया था। इंग्लैंड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय के सत्तारूढ़ होने पर ओलिवर क्रामवेल की हड्डियों को किस प्रकार कब्र से निकालकर पीटा गया था तथा रूस में भी स्टैलिन ने जिस क्रमलिन के चौराहे पर, जिस रेड स्क्वायर पर जिन्दगी में सलामी ली थी, उसी स्क्वायर से उसकी गढ़ी हुई लाश को उखाड़कर किस प्रकार हटा दिया गया इतिहास इसका साक्षी है। इन सारे उदाहरणों की तुलना में महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण के आदिनायक लोकनायक लोकनीतियों के संरक्षक एवं लोक-मर्यादा के संस्थापक प्रभु श्री राम के उस महानतम उदारभाव, चरित एवं लोक-चिन्तन को जिस शिखर पर प्रतिष्ठापित करना चाहें कर सकते हैं।

रामायण में पदे-पदे श्रीराम के लोकचिन्तन का बहुआयामी और अत्यंत व्यापक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। उनमें एक लोकनायक एवं लोकनीति संरक्षक के सभी गुण पुंजीभूत रूप में विद्यमान हैं। उनके द्वारा किसी की भी उपेक्षा करना उचित नहीं है। वे जहाँ अपनी सेना के हर घटक से कुशल प्रश्न पूछते हैं वहीं दूसरी ओर अयोध्यावासियों से भी सदैव सम्बन्धियों के समान कुशल प्रश्न पूछते हैं **पौरान्**

स्वजनवनित्यं कुशलं परिपृच्छति।[10] तपस्वी महर्षियों के उपस्थित होने पर श्रीराम कहते हैं   महर्षियो! किस काम से यहाँ आप लोगों का शुभागमन हुआ है? मैं सब कुछ छोड़कर आपकी क्या सेवा करूँ? यह सारा राज्य, इस हृदयकमल में विराजमान यह जीवात्मा तथा यह मेरा सारा वैभव आप ब्राह्मणों की सेवा के लिए हैं।[11]

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदिस्थितम्।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि मे।।

वस्तुतः यही है श्रीराम की उदारता, व्यवहार कुशलता, एवं लोक-चिन्तन है। इसीलिए वे ही नहीं अपितु उनके व्यक्तित्व के चारों ओर चक्कर लगाने वाले सभी पात्र भी परिस्थिति निरपेक्ष, स्वयं-स्फूर्त कर्तव्य भावना और मानवीय गुणों के सर्वोच्च मूर्तिमान प्रतीक हैं। अततः, आदिकवि के महाकाव्य के महानायक, लोकनायक एवं लोकचिन्तक प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में इतना ही निवेदन है   या तो हम राम को देख सकें या राम की दृष्टि हमारे ऊपर पड़ जाए, नहीं तो हमारी आत्मा ही खुद हमें कोसेगी।[12]

यश्च रामं न पश्येन्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते।।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण 1/1/5
2. वा. रा. 2/34/47-49
3. वा. रा. 2/112/18
4. वा. रा. 2/37/29
5. वा. रा. 2/83/12-15
6. वा. रा. 2/100/147
7. वा. रा. 7/40/23, 24
8. वा. रा. 1/74/30-35
9. वा. रा. 6/109/25
10. वा. रा. 2/2/38
11. वा. रा. 7/60/14
12. वा. रा. 2/17/14

12

महर्षि वाल्मीकि–जीवनवृत्त

महाकवि वाल्मीकि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में आज भी प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता, क्योंकि प्रमाणों का पर्याप्त अभाव है। उनके जन्म वंश माता-पिता, गृहस्थ जीवन तथा आजीविका से संबंधित सामग्री नगण्य सी है। अतः रामायण में वर्णित सामग्री के आधार पर ही उनके विषय में कुछ कहने का प्रयत्न किया जा रहा है।

वाल्मीकि का प्रारम्भिक जीवन किन घात-प्रतिघातों के मध्य व्यतीत हुआ, यह अज्ञात है। रामायण के प्रारम्भ में उन्हें तपस्वी[1] श्रेष्ठ मुनि[2] तथा महर्षि[3] कहा गया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में उनके जीवन का अधिकांश समय रामायण की सर्जना और उच्च श्रेणी के आध्यात्मिक चिन्तन के मध्य व्यतीत हुआ। उनके आश्रम में अनेक शिष्यों का आवास था जिन्हें वे अच्छी-से-अच्छी तथा उच्च शिक्षा देते थे। ये शिष्य महर्षि के धार्मिक कर्मकाण्ड में भी सहायता करते थे। राम द्वारा परित्यक्ता सीता, ऋषि के आश्रम में ही स्थान पाती हैं और उनके पुत्र लव-कुश को वाल्मीकि गानविद्या में निष्णात बनाते हैं। उत्तरकाण्ड के अनुसार वाल्मीकि को जाति का ब्राह्मण तथा दशरथ का परम सखा भी कहा गया है। महर्षि वाल्मीकि को कुछ लोग निम्न जाति का बतलाते हैं, किन्तु वाल्मीकि रामायण[4] तथा अध्यात्म रामायण[5] में इन्होंने स्वयं अपने को प्रचेता का पुत्र कहा है **प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन। मनुस्मृति[6] में प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च**। प्रचेता का वसिष्ठ, नारद, पुलस्त्य, कवि आदि का भाई लिखा है। स्कन्दपुराण के वैशाख माहात्म्य में इन्हें जन्मान्तर का व्याध बतलाया गया है। इससे सिद्ध होता है कि जन्मान्तर में ये व्याध थे। व्याध जन्म के पहले भी स्तम्भ नाम के श्रीवत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध जन्म में शंख ऋषि के सत्संग से रामनाम के जप से ये दूसरे जन्म में अग्निशर्मा (मतान्तर से रत्नाकर) हुए। वहाँ भी व्याधों के संग से कुछ दिन प्राक्तन

संस्कार वश व्याध कर्म में लगे रहे। फिर सप्तर्षियों के सत्संग से मरा-मरा जपकर बाँबी पड़ने से वाल्मीकि नाम से ख्यात हुए और वाल्मीकि रामायण की सर्जना की। कल्याण के स्कन्दपुराण[7] तथा बंगला के कृत्तिवास रामायण, अध्यात्म रामायण[8] आनन्द रामायण राज्यकाण्ड[9] भविष्य पुराण[10] आदि में भी यह कथा थोड़े हेर-फेर से स्पष्ट है। महर्षि वाल्मीकि जी के जीवन परिचय के सन्दर्भ में उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में जो कहानी गढ़ी जा सकती है उसका एक प्रामाणिक स्वरूप आगे चित्रित किया जा रहा है।

हजारों साल पुरानी बात है। चित्रकूट के जंगल में रत्नाकर नाम का एक डाकू रहा करता था। यद्यपि रत्नाकर डाकू ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ था, किन्तु बचपन से ही कोल-किरातों तथा बहेलियों की निरन्तर संगत में रहने के कारण वह भी शिकार आदि करके किसी तरह से पेट पालता था। कुछ समय बाद रत्नाकर जब युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसने एक शूद्रा स्त्री से विवाह कर लिया। इस पत्नी से उसके कई बच्चे भी पैदा हो गए। अब रत्नाकर के ऊपर काफी बड़ा पारिवारिक बोझ आ गया। उसके घर में माता-पिता, पत्नी तथा कई बच्चों समेत परिवार के ढेर सारे सदस्य मौजूद हो गए। इन सबके पालन-पोषण की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अकेले रत्नाकर के ही कंधों पर थी। अतः रत्नाकर इनके भरण-पोषण के लिए शिकार आदि के अलावा चोरी, डकैती तथा छिनौती जैसे पापकर्मों को करने लगा।

मरता क्या न करता रत्नाकर चित्रकूट के जंगलों तथा पहाड़ी रास्तों से गुजरते हुए साधु-संन्यासियों के सारे सामान लूट लेता था। कटार और धनुष बाण लिए वह रास्ते में खड़ा होकर प्रत्येक आने-जाने वाले को डरा-धमकाकर उसके सारे खाने-पीने के सामान, कपड़े-लत्ते, रुपये-पैसे सब लूट लिया करता। न देने पर उन्हें मारता पीटता विविध प्रकार की यातना देकर जबर्दस्ती छीन लेता। इसी लूट, चोरी तथा डकैती से प्राप्त वस्तुओं एवं धन से वह माँ, बाप, पत्नी तथा बच्चों का पेट पालने लगा।

इस प्रकार से जीवनयापन करते हुए उसे कई वर्ष बीत गए। रत्नाकार प्रतिदिन लोगों को सुबह से शाम तक लूटता तथा रात्रि में अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक खा-पीकर सो जाया करता था। यही उसका जीवन था और यही दिनचर्या थी।

एक दिन की बात है रास्ते में बैठे-बैठे रत्नाकर को काफी समय बीत गया लेकिन कोई आने जाने वाला अभी तक उधर से नहीं गुजरा। एकाएक रत्नाकर ने देखा कि दूर कोई सात साधू एक साथ आ रहे हैं। रत्नाकर ने अनुमान लगाया कि उनके पास में गठरी है जिसमें ढेर सारा माल इकट्ठे मिल जायेगा। ज्यों ही वे सातों

साधू नजदीक आए, रत्नाकर धनुष-बाण और कटार लिए रास्ते में कूद पड़ा और जोर से चिल्लाया, ठहरो! नहीं तो अभी मैं तुम सभी को एक ही क्षण में मौत के घाट उतार दूँगा। इस पर वे साधू डरते काँपते वहीं ठूँठ जैसे खड़े हो गए। उसने पुनः चिल्लाकर कहा, "तुम लोगों के पास जो भी सामान, गठरी, कमण्डल एवं रुपये-पैसे हैं, सब इकट्ठे यहीं रख दो और सीधे अपने रास्ते चले जाओ।" रत्नाकर के ऐसा कहने पर उनमें से एक साधू ने काँपते स्वर में कहा, भैया! हम लोग अपना सभी सामान रख देते हैं। किन्तु मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूं। मेरे प्रश्न का जवाब आप दे दीजिए और ये सब सामान ले लीजिए। मैं सीधे अपने रास्ते चला जाऊँगा। साधू के ऐसा कहने पर रत्नाकार ने अत्यंत क्रोधित होकर कहा, "मैं कुछ भी कहना-सुनना नहीं चाहता। चुपचाप सब सामान रखो और यहाँ से चलते बनो, नहीं तो अभी मैं तुलसी ऐसी-तैसी कर दूँगा। साधुओं के बहुत विनती करने के बाद वह तैयार हो गया। उसने क्रोधपूर्वक कहा   पूछो? क्या पूछना चाहते हो? इस पर साधू ने प्रश्न किया कि भैया! यह सब तुम क्यों करते हो किसके लिये करते हो? रत्नकार ने गरजकर उत्तर दिया यह मैं अपने परिवार तथा बच्चों के लिए करता हूँ तथा इसी से मैं उनका पेट पालता हूँ। इसमें पूछने की कौन सी बात है? इस पर साधू ने कहा, "ठीक है भाई! अच्छा करते हो। लेकिन एक बात यह बताओ कि लोगों को मारते हो, पीटते हो उनको, सताते हो उनका सामान लूटते हो। ये सभी पाप कर्म तो तुम अकेले ही करते हो और लूट के सामान का उपभोग तुम्हारे माँ-बाप, पत्नी और बच्चे सभी करते हैं। क्या तुम्हारे द्वारा किये जा रहे इस पाप के भागीदार भी तुम्हारे माँ-बाप, पत्नी और बच्चे होंगे? रत्नाकर ने तुरन्त तड़क करके कहा, "क्यों नहीं होंगे। जब इन सभी सामान के भागीदार वे हैं तो मेरे पाप के भी भागीदार होंगे।"

रत्नाकर के ऐसा कहने पर साधुओं ने कहा, "मैं कैसे जानूं कि वे सब तुम्हारे पाप के भागीदार होंगे। जाओ! जरा तुम बारी-बारी अपने बच्चों, पत्नी एवं माँ-बाप से पूछकर आओ, और हमें बाताओ कि वे क्या कहते हैं? इस पर रत्नाकार पुनः क्रोधित हो गया और बोला, "तुम लोग मुझे बुद्धू समझते हो क्या? उधर पूछने जाऊँ और तुम लोग धीरे से यहाँ से निकल जाओ।" रत्नाकार के ऐसा कहने पर साधुओं ने मुस्कराते हुए कहा कि, "ठीक है भाई, अगर तुम्हें यह डर है कि हम लोग भाग जाएंगे तो यह रस्सी लो और हम सातों लोगों को इसी पेड़ से कसकर बाँध दो।" रत्नाकर ने कहा, हाँ ये ठीक है। इसके बाद वह सातों साधुओं को रस्सी से एक पेड़ में बाँधकर घर की ओर चल पड़ा।

घर पहुँचकर सबसे पहले रत्नाकार ने अपने बच्चों को बुलाया। उनसे पूछा कि बच्चो जो मैं पाप की कमाई करके तुम लोगों को खिलाता हूँ। उस मेरे पाप में

तुम लोग भी भागीदार बनोगे कि नहीं? बच्चों ने कहा, "पिताजी पाप तो आप करते हैं हम लोग तो करते नहीं। फिर हम कैसे आपके पाप में हिस्सेदार बन सकते हैं। रत्नाकर ने पुनः पत्नी को बुलाया और उससे भी वही प्रश्न किया। पत्नी ने उत्तर दिया, पाप करने मैं तो जाती नहीं। वह पाप तो आप ही करते हैं। इसलिए आप ही उसके जिम्मेदार हैं। मैं उसकी भागीदार कैसे बन सकती हूँ। फिर रत्नाकार ने माता-पिता से वही प्रश्न किया। माता-पिता ने कहा, बेटा। मैंने पाल-पोषकर तुम्हें बड़ा कर दिया। अब मैं वृद्ध हूँ। तुम पाप करके खिलाते हो या पुण्य करके, उसके जिम्मेदार तो तुम हो। तुम जो पाप करते हो उसे तुम्हीं भोगोगे। हर व्यक्ति अपने द्वारा किए हुए पाप-पुण्य का जिम्मेदार होता है। वही उसका फल भोगता है। उसके द्वारा किए हुए पाप को माँ-बाप, पत्नी और बच्चे आदि कोई भी नहीं भोगते। इसलिए तुमने जो पाप किया है उसके जिम्मेदार और भोगने वाले तुम्हीं होगे। हममें से कोई भी तुम्हारे पाप का हिस्सेदार नहीं हो सकता।

जिनकी सुख-सुविधा के लिए रत्नाकर दिन रात मरता था। जिनके लिए चोरी, डकैती करता था। जिनके लिए लोगों को प्राणदण्ड तक दे देता था। जिनके लिए सम्पूर्ण पाप कर्म करता था। वही सब माँ-बाप, पत्नी और बच्चों के मुँह से दो टूक उत्तर सुनकर रत्नाकर ठगा सा रह गया। उसके पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। थोड़ी देर के लिए वह जैसे विमूढ़ हो गया। उसकी समझ में अब जैसे कुछ नहीं आ रहा था कि अब वह क्या करे, कहाँ जाए? इसी के बाद याद आया कि उन सातों साधुओं को चलकर देखूँ। उन्होंने ही भेजा था। अब वही हमारी इस समस्या का समाध ान कर सकते हैं।

चिन्तित, दुःखी और निराश मन से रत्नाकार उन साधुओं के पास लौटा उनकी रस्सी खोलते-खोलते वह फूट-फूट कर रोने लगा। साधुओं ने पूछा, क्या हुआ भाई? परिवार के लोगों ने क्या कहा? रत्नाकर ने मुँह नीचे किए रुँधे गले से उत्तर दिया, 'सभी' ने मेरे पाप में हिस्सेदार होने से इंकार कर दिया। आज मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने जिनके लिए सारे पापकर्म किए। वे कोई मेरे पाप के हिस्सेदार नहीं बनेंगे। अब मैं क्या करूं? मैं अपने पापों का प्राश्यचित कैसे करूँ। अब आप ही लोग मुझे कोई सही रास्ता बताइए? ऐसा कहते-कहते रत्नाकर निरीह सा विफर कर रोने लगा।

रत्नाकर की दैन्य दशा देखकर साधुओं ने बहुत प्रकार से ढाँढस बंधाया। ये सातों साधु कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। ये सप्त ऋषि या सप्तर्षि थे। रत्नाकर बार-बार हाथ जोड़े हुए उनसे प्रायश्चित का विधान पूछने लगा। अंततः सप्तर्षियों ने उसे सांत्वना देते हुए 'राम' नाम का जाप करने को कहा। "तुम केवल 'राम' 'राम' ऐसा जाप करो। तुम्हारे सारे पाप कट जायेंगे। ऐसा कहते हुए तुम भविष्य में बहुत बड़े ऋषि बनोगे।"

जिन्दगी भर नाना प्रकार के पाप कर्म करने वाले रत्नाकार से 'राम' नाम कहते ही नहीं बनता था। 'राम' 'राम' की जगह वह 'मरा' 'मरा' ही कहता। सप्तर्षियों ने देखा कि इससे 'राम' 'राम' कहते नहीं बन रहा है। इसीलिए उन्होंने उसे 'मरा' 'मरा' जपने का ही आदेश दे दिया।

अन्ततः रत्नाकर डाकू चित्रकूट में इसी स्थान पर एक जगह कठोर तप करते-करते बैठकर 'मरा' 'मरा' का जाप करने लगा। जप करते-करते हजारों वर्ष व्यतीत हो गए। रत्नाकर के शरीर के चारों ओर दीमकों ने मिट्टी का ढेर लगा दिया। रत्नाकर दीमकों की बाँबी से ढक गए।

एक दिन वे सातों मुनि पुनः प्रगट हुए। उन्होंने रत्नाकर से कहा उठो **वाल्मीकि**। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गयी। आज से तुम संसार में वाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध होगे। दीमकों की बाँबी को संस्कृत भाषा में वाल्मीकि कहते हैं। वाल्मीकि से तपस्वी रत्नाकर का सम्पूर्ण शरीर ढक गया था इसलिए मुनियों ने उनका नाम वाल्मीकि रख दिया।

रत्नाकर अब वाल्मीकि बन गये थे। उनका जीवन अब सात्त्विक हो गया था। उनकी दिनचर्या का प्रत्येक क्षण संध्या, पूजन, ध्यान एवं जप-तप में बीतने लगा। उनका एक व्यवस्थित आश्रम बन गया। यहाँ कुछ शिष्य भी रहने लगे थे।

एक दिन वाल्मीकि के आश्रम में देवर्षि नारद पधारे वाल्मीकि ने उन्हें प्रणाम कर विधिवत् आतिथ्य किया। पुनः उनसे कई प्रश्न किये। उत्तर में, नारद जी ने वाल्मीकि को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की सम्पूर्ण कथा सुनायी। फिर क्या था, महात्मा वाल्मीकि ने प्रतिदिन इसी रामकथा का चिन्तन मनन प्रारम्भ कर दिया।

आश्रम के पास तमसा नदी बहती थी। वाल्मीकि प्रतिदिन वहाँ स्नान करने जाया करते थे एक दिन की बात है महात्मा जी अपने शिष्यों के साथ स्नान के लिए तमसा तट पर पहुँचे। उन्होंने शिष्यों से कहा कि मेरा कमण्डल और वस्त्र यहीं रख दो। स्वयं वन की मनोहर शोभा देखते हुए इधर-उधर विचरने लगे। उनके पास ही क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा विचरते हुए दिखाई पड़ा। दोनों एक दूसरे से कभी अलग नहीं होते थे तथा बड़ी ही मधुर बोली में बोलते थे। सहसा मुनि के देखते-ही-देखते एक बहेलिए ने उस कामासक्त जोड़े में से नर पक्षी को बाण से मार डाला। वह पक्षी खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पंख फड़फड़ाता हुआ वह तड़पने लगा। अपने पति की हत्या हुई देखकर उसकी पत्नी क्रौंची करुणाजनक स्वर में चीत्कार करने लगी।

उत्तम पंखों से युक्त वह पक्षी सदा अपनी पत्नी के साथ विचरण करता था उसके मस्तक का रंग ताँबे के समान लाल था। जिस समय उसका वध हुआ वह

काम से मतवाला हो गया था। ऐसे पति से बिछुड़कर क्रौंची बड़े दुःख से रो रही थी। उस नरपक्षी की वह दुर्दशा देखकर उन धर्मात्मा ऋषि को बड़ी दया आयी। स्वभावतः करुणा का अनुभव करने वाले महात्मा ने सोचा यह तो बहुत बड़ा पाप हुआ है। ऐसा विचार करते हुए क्रौंची की ओर देखकर उन्होंने बहेलिए को शाप देते हुए कहा हे बहेलिए! तुम्हें नित्य-निरन्तर कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी। क्योंकि तूने इस क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक की, जो काम से पीड़ित था, बिना किसी अपराध के हत्या कर डाली

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः   काममोहितम्॥

ऐसा कहने के बाद मुनि के मन में चिन्ता हुई कि अरे! शाप और शोक के फलस्वरूप मैंने एक छन्दोबद्ध श्लोक कह डाला, पास खड़े शिष्य को भी उन्होंने बताया। शिष्य ने भी समर्थन किया, गुरुदेव यह तो छन्दोबद्ध संस्कृत श्लोक में आपने शाप दिया है। यह श्लोक आपके शोक से सहज ही निकल पड़ा। शिष्य के इस कथन से मुनि को बहुत संतोष हुआ। तुरन्त उन्होंने स्नान किया। पुनः आश्रम लौटकर शिष्यों के साथ अन्य चर्चाओं में लग गये। किन्तु मन में वही घटना गूंज रही थी। शोक से निकले हुए श्लोक की चिन्ता बराबर बनी हुई थी। इसलिए एकान्त में विश्राम करने के लिए वे अपनी कुटिया में चले गये।

वाल्मीकि जी अपनी कुटिया में चिन्तामग्न एवं अर्द्ध-निद्रा अवस्था में पड़े हुए थे। सहसा उन्होंने एक दिव्य प्रकाश को कुटिया में प्रवेश करते हुए देखा। उनकी आंखें चकाचौंध हो गयीं। फिर उन्होंने देखा कि यह दिव्य प्रकाश स्वरूप साक्षात् ब्रह्मा जी उनके सामने उपस्थित हैं।

शीघ्र ही उन्होंने ब्रह्मा जी को प्रणाम करते हुए उनका विधिवत् पूजन किया। पुनः उन्हें आसन देकर स्वयं भी उनके आदेश से आसन ग्रहण किया। उस समय साक्षात् लोक-पितामह ब्रह्माजी उनके सामने बैठे हुए थे फिर भी वाल्मीकि का मन उस क्रौंच पक्षी के प्राण ले लिए बहेलिए ने ऐसा विचार करते हुए वाल्मीकि ने पुनः वही श्लोक ब्रह्मा जी के सामने दुहरा दिया। किन्तु शाप के अनौचित्य को ध्यान करते ही फिर से शोक और चिन्ता में डूब गए।

ब्रह्माजी, उनकी मनःस्थिति को समझकर मुस्कराने लगे। वाल्मीकि जी से उन्होंने कहा, "ब्रह्मन्! तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह छन्दोबद्ध श्लोक वाक्य रूप ही होगा इस विषय में तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए। मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे मुँह से ऐसी वाणी निकली है।" मुनि श्रेष्ठ! तुम श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र का

वर्णन करो। भगवान श्रीराम संसार में सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। तुमने नारद जी के मुँह से जैसा सुना है, उसी के अनुसार उनके चरित्र का चित्रण करो। भगवान श्रीराम का जो भी गुप्त अथवा प्रकट चरित्र है, वे सब अज्ञात होने पर भी तुम्हें ज्ञात हो जाएगा। तुम्हारे द्वारा रचे गए इस काव्य में तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी। "इसीलिए तुम श्रीरामचन्द्र जी की पवित्र और मनोरथ कथा को श्लोकबद्ध लिखो। जब तक इस पृथ्वी पर पर्वतों और नदियों का अस्तित्व रहेगा तब तक संसार में तुम्हारे द्वारा रचित इस रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा।" ऐसा कहकर ब्रह्मा जी वहीं अन्तर्धान हो गए तथा महर्षि वाल्मीकि, रामायण महाकाव्य की रचना में जुट गए।

अंततः महर्षि वाल्मीकि ने, गायत्री मंत्र में जितने अक्षर हैं, उतने हजार श्लोकों से युक्त रामायण की रचना की। गायत्री मंत्र में 24 अक्षर हैं। रामायण के प्रत्येक हजारवें श्लोक के तुरन्त बाद का प्रथम श्लोक गायत्री मंत्र के अक्षर से ही प्रारंभ होता है, इसीलिए महर्षि वाल्मीकि के रामायण को **'चतुर्विंशति साहस्री संहिता'** भी कहा जाता है। वाल्मीकि जी का यह रामायण महाकाव्य, संसार का प्रथम महाकाव्य और आदि काव्य माना गया। इस महाकाव्य की रचना के समय से आज तक सभी कवियों एवं साहित्यकारों ने इसे ही अपनी रचना का आधार माना है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण इस संसार का प्रथम काव्य एवं आदिकाव्य है तथा महर्षि वाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

जा पर कृपा राम कइ होई, तेहिं पर कृपा करई सब कोई। ईश्वर की विशेष अनुकम्पा ने रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया। सप्तर्षि उनके पास तक पहुँचे। देवर्षि नारद स्वयं उनके पास जाकर रामकथा सुनाए। साक्षात् ब्रह्मा प्रगट होकर दर्शन दिए। यही नहीं, श्रीराम को जब चौदह वर्ष का वनवास हुआ तो वे चित्रकूट के जंगलों में जाते हैं वहाँ पहुँचकर वे सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि के ही आश्रम में जाते हैं। पुनः वाल्मीकि जी ने ही उन्हें बताया कि आप लोग यहाँ चित्रकूट पवर्त पर निवास कीजिए। वहाँ आप सबकी सब प्रकार से भलाई है **चित्रकूट गिरि करहु निवासू, तहँ तुम्हार सब भांति सुपासू।** वाल्मीकि जी के निर्देशानुसार राम, लखन एवं सीता के साथ चित्रकूट पर्वत पर 12 वर्षों तक वनवास की अवधि बिताते हैं। इसके बाद राम को वापस ले जाने के लिए भरत, शत्रुघ्न तीनों माताएँ जो भी चित्रकूट आए, सभी वाल्मीकि के आश्रम से होकर ही आगे गए।

रावण वध के बाद राम अयोध्या के राजा हुए। उस समय एक जनापवाद के कारण उन्होंने गर्भवती सीता को घर से निकाल दिया। राम के आदेश से लक्ष्मण उन्हें

घनघोर जंगल में छोड़ देते हैं। इसके पास ही वाल्मीकि जी का आश्रम था। कुछ मुनिकुमारों ने देखा कि एक सुन्दर स्त्री बैठकर विलाप कर रही है। मुनिकुमार दौड़कर महर्षि के पास पहुँचे। महर्षि वाल्मीकि को सम्पूर्ण समाचार सुनाया। वाल्मीकि जी शीघ्र ही वहाँ पहुँचे। त्रिकालज्ञ मुनि ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, पुत्री मैं जानता हूँ। तुम कौन हो? और किस कारण यहाँ तक आयी हो? किसी प्रकार का कष्ट का अनुभव मत करो। आओ मेरे आश्रम में चलो। सभी तुम्हारी सेवा करके धन्य होंगे। मुनिवर के आदेश से सीताजी वहीं आश्रम में रहने लगीं। कुछ समय बाद सीताजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वाल्मीकि जी ने उनका लव और कुश नाम रखा। लव और कुश को सम्पूर्ण रामायण कंठस्थ करवाया। वीणा बजाते हुए लव और कुश रामायण का अत्यन्त मधुर गान करते थे।

राम जब अश्वमेध यज्ञ करते हैं तो लव और कुश के साथ महर्षि वाल्मीकि भी इस यज्ञ में पहुँचते हैं। वाल्मीकि जी के आदेशानुसार लव और कुश अपने सुमधुर कण्ठों से वीणा बजाते हुए सम्पूर्ण रामायण का गान करते हैं राजा राम इन सुन्दर बच्चों के मधुर गान से प्रभावित होते हैं। राम के पूछने पर वाल्मीकि जी इन बच्चों का परिचय देते हैं। इसी समय वे सीता जी के सतीत्व के विषय में भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। सीताजी को महर्षि ने राजसभा में उपस्थित किया। पुनः सीताजी धरती माँ की गोद में समाहित हो जाती हैं।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग (1, 2, 3)
2. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग (श्लोक संख्या 27-30)
3. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग (श्लोक संख्या 40-42)
4. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग 93 (श्लोक संख्या 07 एवं सर्ग 96 श्लोक संख्या 19)
5. अध्यात्म रामायण उत्तरकाण्ड सप्तम सर्ग (श्लोक संख्या 31)
6. मनुस्मृति 1/35
7. कल्याण स्कन्दपुराणांक, पृ. 381 से 707 तथा 1024
8. अध्यात्म रामायण अयोध्याकाण्ड, सर्ग 06, श्लोक 64 से 92
9. आनन्द रामायण राज्यकाण्ड, सर्ग 14 श्लोक 21 से 49
10. भविष्य पुराण प्रतिसर्ग 04-10

13

वाल्मीकि के राम का अवतारत्व एवं परब्रह्मत्व

वाल्मीकि रामायण में यद्यपि किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदाय में निरूपित परब्रह्म और उसके अवतारत्व का निरूपण नहीं किया गया है, तथापि उसके महानायक पुरुषोत्तम श्रीराम में ही ईश्वरत्व की वह आभा दृष्टिगोचर होती है जिसकी तुलना परब्रह्म से की जा सकती है। सृष्टि के समस्त गुण जब पूर्ण पराकाष्ठा पर एक ही व्यक्ति में एकत्र दिखने लगते हैं, वहीं हमारी परब्रह्म की भावना पूर्ण होती प्रतीत होती है और यही भावना वाल्मीकि के राम में पूर्ण हुई है। वेद और उपनिषदों के अव्यक्त ईश्वर को महामानव के माध्यम से वाल्मीकि रामायण में परब्रह्म के अवतार रूप में साकारता प्रदान की गयी है।

वेदवेद्य परब्रह्म साक्षात् भगवान के दशरथपुत्र रूप में प्रकट होने पर भगवान का प्रतिपादन करने वाले वेद को भी रामायण के रूप में परमतत्त्व परब्रह्म का प्रतिपादन करने के लिए प्रचेता के पुत्र वाल्मीकि के द्वारा प्रकट होना पड़ा [1]

वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।।
वेदोपवृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।

महर्षि वाल्मीकि ने भी युद्धकाण्ड के अन्त में अपने आपको रामायण का कर्ता और प्रचेता का पुत्र लिखकर यह लिखा है कि मेरी लिखी हुई इस रामायण का अतिदेव ब्रह्मा जी ने भी अनुमोदन किया है [2]

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तदब्रह्माप्यन्वमन्यत।।

वेदावतार श्रीमद्रामायण पाठक को बड़ी ही मधुर कोमलकान्त पदावली में रामचरित्र की दिव्यामृतमयी सुरसरिता में अवगाहित कर परब्रह्म राम के समक्ष उपस्थित करती है। देवता लोग परोक्षप्रिय होते हैं, अतः वेद या वेदावतार रामायण

भी परोक्षरीति से यत्र-तत्र राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन करती है।

महर्षि वाल्मीकि भगवान राम के समकालीन थे। उन्हें समस्त रामचरित्र विदित था। क्रान्तदर्शी तो थे ही। जितने रामचरित्र लिखे गये उसमें रामायण की ही सर्वाधिक महिमा है। इस रामायण में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें रामचन्द्र जी की भगवत्ता, अवतारत्व एवं परब्रह्मत्व विशदरूप से प्रतिपादित हुई है। महर्षि वाल्मीकि के कथनानुसार भगवान् श्रीरामचन्द्र जी साक्षात् सनातन विष्णु हैं और परम प्रचण्ड रावण के वध की अभिलाषा रखने वाले देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए हैं [3]

स हि देवैरूदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्चितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।।

श्रीरामचन्द्र जी साक्षात पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु के अवतार थे, यह बात वाल्मीकि रामायण में जगह-जगह कही गयी है। जब संसार में रावण का उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुःखी हो गये, तब उन्होंने आकर ब्रह्मा से प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओं को धीरज बँधा रहे थे, उसी समय भगवान विष्णु के प्रकट होने का वर्णन इस प्रकार आता है [4]

एतस्मिन्नतरे विष्णुरूपायतो महाद्युतिः।
शंङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः।।
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्धमानः सुरोत्तमैः।।

इतने में ही महान तेजस्वी उत्तम देवताओं द्वारा वन्दनीय जगत्पति भगवान विष्णु मेघ पर चढ़े हुए सूर्य के समान गरुड़ पर सवार हो यहाँ आ पहुँचे। उनके शरीर पर पीताम्बर तथा हाथों में शंख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्ण के बाजूबंद शोभा पा रहे थे। इसके बाद देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान ने राजा दशरथ के घर **मनुष्य रूप में अवतार लेना स्वीकार किया।**

देवताओं ने रावण के आतंक से मुक्ति पाने के लिए विष्णु भगवान से प्रार्थना की विष्णु देव! आप अपने चार स्वरूप बनाकर अयोध्या के राजा दशरथ की ह्री, श्री और कीर्तितुल्य तीनों रानियों के गर्भ से पुत्र रूप में **अवतार ग्रहण** कीजिए [5]

अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्तित्युपमासु च।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्वमानं चतुर्विधम्।।

पुनः विष्णु भगवान अपने शरीर से प्रकट हुई चारों भुजाओं में समान चार दिव्य विग्रहों (राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) के रूप में प्रकट हुए। इनमें महातेजस्वी श्री राम सबकी अपेक्षा अधिक गुणवान होने के कारण राजा दशरथ को विशेष प्रिय थे [6]

सर्व एवं तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः।
स्वशरीराद् विनिर्वित्ताश्चत्वारं इव बाहवः।।
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवन्तरः।।

विष्णु का आविर्भाव युग-युग में विचित्र घटनाक्रम के माध्यम से वेद पुराण में वर्णित है। राजा दशरथ ने ऋष्यश्रृंग के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के फलस्वरूप मूर्तिमान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को ही मानो राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न के रूप में प्राप्त किया [7]

कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्।।

श्री रामचन्द्र जी का विवाह होने के बाद जब वे अयोध्या को लौट रहे थे उस समय रास्ते में परशुराम जी मिले। श्रीराम विष्णु के अवतार हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करने के लिए उन्होंने श्रीराम से विष्णु भगवान को धनुष पर बाण चढ़ाने के लिये कहा, तब श्रीराम जी ने तुरन्त ही उनके हाथ से दिव्य धनुष बाण लेकर उस पर बाण चढ़ा दिया और कहा यह दिव्य वैष्णव बाण है, इसे कहाँ छोड़ा जाय? यह देख-सुनकर परशुराम जी चकित हो गये। उनका तेज श्रीराम में जा मिला। उस समय श्रीराम की स्तुति करते हुए परशुराम जी कहते हैं [8]

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप।।

हे राम! मैं आपको पहचान गया। आप साक्षात् मधुसूदन विष्णु हैं, सुरेश्वर हैं। ये सब देवता आकर आपका दर्शन कर रहे हैं। युद्ध में आपका साम्मुख्य कोई नहीं कर सकता। आप त्रिलोकीनाथ हैं।[9]

इसी प्रकार कौशल्या जी को सान्त्वना देती हुई सुमित्रा जी की उक्ति में भी श्रीराम की भगवदीयता का प्रमाण मिलता है। वे कहती हैं कि राम वनवास पूरा करके यथासमय लौट आयेंगे और अपना राज्य प्राप्त करेंगे। वे तो सूर्य के सूर्य, अग्नि के भी अग्नि, श्री की भी अनुपम श्री, कीर्ति की भी कीर्ति, क्षमा की भी क्षमा, देवताओं के भी देवता और प्राणियों में सर्वोत्तम प्राणवान हैं [10]

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभु।
श्रियाः श्रीश्च् भवेदग्रया कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा।
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसन्तमः।।

उपनिषद् वेद्य, परमरस, सर्वसुख के आधार, सच्चिदानन्द श्रीराम हैं। शिव-धनु-भंङ्ग के पश्चात् राजा जनक स्वीकार करते हैं कि दशरथनन्दन श्रीराम की अति अद्भुत, अतर्क्य, अचिन्त्य शक्ति का परिचय उन्होंने पाया [11]

भगवन् दृष्टिवीर्योमे रामो दशरथात्मजः
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया।।

श्रीराम की भगवदीयता, अवतारत्व एवं परब्रह्मत्व का स्पष्ट निदर्शन हुनमान जी की रावण के प्रति उक्ति में भी दर्शनीय है परमयशस्वी राम चराचर प्राणियों सहित इन सारे लोगों का संहार करके फिर दूसरे क्षण उनकी सृष्टि भी कर सकते हैं [12]

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य समूलान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्त्रस्टुं शक्तो रामो महायशाः।।

सुग्रीव से भगवान ने स्वयं भी कहा था सखे हरीश्वर! सारे देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, नाग, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर तो क्या स्वयंभू ब्रह्मा, त्रिनेत्र रुद्र और सुरनायक शुक्र भी युद्ध में राघवेन्द्र के सम्मुख नहीं ठहर सकते।[13]

इन सबका अंगुली के अग्रभाग मात्र से संहार कर सकता हूँ [14]

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्
अंगुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर।।

राम का तेज अपूर्व था। अतः बिना किसी संकेत के ही तारा ने उन्हें पहचान लिया [15]

ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसां सूर्यमिव ज्वलन्तम्।
अदृष्टपूर्वं पुरुष प्रधानमयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे।।

इतने में ही उसने अपने सामने धनुष-बाण धारण किए श्रीराम को खड़ा देखा, जो अपने तेज से सूर्यदेव के समान प्रकाशित हो रहे थे। उन पुरुष प्रवर श्रीराम को, जो पहले कभी देखने में नहीं आये थे, देखकर मृगशावक नयनी तारा समझ गयी कि ये ही काकुत्स्थकुलभूषण श्रीराम हैं। वह उन्हें अद्वितीय, अलौकिक, मनुष्यभिन्न लोकोत्तर दिव्यशरीरी कहती हैं [16]

मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः।

रावण का भाई विभीषण श्रीराम की शरण में आया हुआ है। सुग्रीव, जाम्बवान आदि उसे शंका की दृष्टि से देखते हैं। शरणागतवत्सल श्रीराम स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं कि जो एक बार भी शरण में आकर कहता है मैं तुम्हारा हूँ और मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियों से अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदा के लिये व्रत है [17]

सकृदेव प्रपन्नाम तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम्।।

वाल्मीकि जी भगवान श्रीराम की दिव्य विभूतियों के वर्णन प्रसंग में उन्हें शरण्यं (शरणदाता) और शरणागतवत्सल कहते हैं इन्द्र को भी उत्पन्न करने वाले महेन्द्र, युद्ध का अन्त करने वाले पद्मनाभ आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागतवत्सल कहते हैं [18]

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः।।

वाल्मीकि के राम के परब्रह्मत्व के प्रतिपादन में मंदोदरी का ज्ञानमय उद्गार बहुत ही स्तुत्य है ये रामचन्द्र अवश्य ही महायोगी और सनातन परमात्मा हैं। न इनका आदि है, न मध्य, न अन्त। ये महत्तत्व से भी परे महनीय तत्त्व हैं, प्रकृति से भी परे हैं, जगत के पालक-पोषक हैं। इनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह सुशोभित है। भगवती श्री इनसे कभी पृथक् नहीं होती। अतएव ये नित्यश्री हैं। इनको कोई जीत नहीं सकता। ये शाश्वत् और निश्चल हैं। सत्य-पराक्रम, शंङ्खचक्रगदाधारी एवं स्वयं विष्णु भगवान ही सम्प्रति मनुष्यरूप धारण किए हुए हैं।[19]

इसी प्रकार सीतामाता की अग्निपरीक्षा के समय देवताओं ने श्रीराम की स्तुति करते हुए कहा [20]

"आप समस्त लोकों के निर्माणकर्ता हैं, ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, विभु हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा कि आप चतुर्भुज श्रीमन्नारायण हैं। आप अक्षर ब्रह्म हैं। आप त्रिकाल सत्य हैं। आप उपेन्द्र, मधुसूदन और पद्मनाभ हैं। आप स्वयं प्रभु परमात्मा एवं ऊँकार रूप हैं। यह समस्त जगत आपका शरीर स्थानीय है। आप विष्णु हैं और सीता जी साक्षात् लक्ष्मी हैं।[21]

श्रीराम साक्षात् भगवान हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा राम के विराट स्वरूप का वर्णन करते हैं आप तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं। रुद्रों में अष्टम् रुद्र, साध्यों में पञ्चम साध्य भी आप ही हैं। दोनों अश्विनी कुमार आपके कर्णेन्द्रिय हैं और सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं [22]

त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः।।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्वानामपि पञ्चमः।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ।।

इसी क्रम में वाल्मीकि जी एक स्थल पर पुनः कहते हैं श्रीराम! आप परब्रह्म, परमतत्त्व, परमज्ञान, परमतप, समस्त जगत की उत्पत्ति बीज स्वरूप, परमक्षेत्र, परम कारण के भी कारण हैं [23]

परं ब्रह्म परं तत्वं परं ज्ञानं परं तपः।
परं बीजं परं क्षेत्रं परं कारणकारणम्।।

रावणवध के पश्चात् जब देवता लोग ब्रह्मा जी के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुँचे तो बातचीत करते हुए श्रीराम ने कहा मैं तो अपने को दशरथ पुत्र राम नाम का मनुष्य समझता हूँ। मैं जो हूँ, जहाँ से आया हूँ, यह आप लोग ही बताएं। इस पर ब्रह्मा जी सबके सामने रहस्य खोलते हुए श्रीराम की भगवदीयता एवं परब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हैं [24]

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकश्रृंङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपलिजित।।
अक्षरं ब्रह्मं सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।।
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खङ्गदृग् विष्णुः कृष्णश्चैव वृहद्बलः।।

आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं, आप ही भूत-भविष्य के शत्रुओं को जीतने वाले और शृंङ्गधारी वराह भगवान हैं। राघव! आप आदि, मध्य और अंत में सत्यस्वरूप अविनाशी ब्रह्म हैं। आप सम्पूर्ण लोकों में परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं। आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा शार्ङ्ग धनुष एवं खंग धारण करने वाले विष्णु हैं और आप ही महाबलवान कृष्ण हैं।

यही नहीं, राजा दशरथ भी लक्ष्मण के साथ बातचीत करते समय श्रीराम के परब्रह्मत्व एवं भगवदीयता का बखान करते हुए कहते हैं सौम्य! ये परंतप राम साक्षात् वेदवर्णित अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं। ये देवों के हृदय और परम रहस्यमय हैं [25]

एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
देवानां हृदयं सौम्यं गुह्यं रामः परंतपः।।

इसी क्रम में लक्ष्मण से पुनः कहते हैं लक्ष्मण! महात्मा राम पुरुषोत्तम हैं। इन्द्र सहित ये तीनों लोक, परमर्षिगण और सिद्धजन भी इनका अभिवादन करके इनकी पूजा किया करते हैं [26]

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
अभिवाद्यं महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम्।।

श्रीराम की भगवदीयता, अवतारत्व एवं परब्रह्मत्व का स्पष्ट प्रतिपादन प्रस्तुत प्रसंग से होता है श्रीराम अपनी लोककल्याणकारिणी नरलीला परिपूर्ण करके अपने भाई भरत और शत्रुघ्न के साथ सशरीर ही वैष्णव तेज में प्रविष्ट हो गये थे [27]

विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः।।

इससे श्रीराम की सनातन भगवन्ता ही सिद्ध होती है। श्रीराम के विष्णु रूप धारण करने के पूर्व देवराज इन्द्र लक्ष्मण जी को अपने साथ सशरीर ही दिव्य धाम लिवा गये थे [28]

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम्।
प्रगृहयं लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह।।

यहाँ पर यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि श्रीराम जिस प्रकार चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनके समस्त परिकर भी दिव्य और चिन्मय हैं। श्रीराम के आयुध दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरों पर पुरुष विग्रह में उनकी सेवा सुश्रूषा में निरत रहते हैं। वाल्मीकि जी ने लिखा है कि राम के अनेक प्रकार के बाण और उनका विशाल धनुष रूपधारी होकर उनके पीछे-पीछे गये थे [29]

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्।
तथाऽऽयुधाश्च ते ययुः पुरुषविग्रहाः।।

श्रीराम के सहायक रीछ और वानर भी साधारण रीक्ष और बंदर नहीं थे। वे सब विभिन्न देवताओं के अवतार थे। वे रामरूपी थे अर्थात् सिद्धयोगी के समान इच्छानुसार रूप धारण करके सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत होकर हाथियों पर चढ़कर चले गये थे [30]

नवनागसहस्त्राणि ययुरास्थाय वानराः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः।।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त स्थलों से जहाँ श्रीराम की भगवदीयता, अवतारत्त्व एवं परब्रह्मत्व का स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है, वहीं श्रीराम के अंशावतारों की भगवदीयता एवं अवतारत्त्व का भी परिचय प्राप्त है। उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त अनेकशः श्रीराम के अवतारत्त्व, भगवदीयता एवं परब्रह्मत्व को प्रतिपादित करने वाले दृष्टान्त वाल्मीकि रामायण में सुलभ हैं, किन्तु विषय विस्तार की दृष्टि से सबका प्रस्तुतिकरण प्रकृत स्थल पर समीचीन नहीं है। अन्ततः उक्त शीर्षक एवं तथ्यों की पुष्टि में आदिकवि वाल्मीकि के मतानुसार भगवान् श्रीराम सर्वजगन्मय (सर्वव्यापक) हैं। श्रीराम के राज्य शासनकाल में प्रजावर्ग के भीतर राम की चर्चा होती थी। सारा जगत श्रीराममय हो रहा था [31]

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति।।

किंवा, महर्षि वाल्मीकि अपने नायक श्रीराम की भगवदीयता, अवतारत्व, पुरुषोत्तमत्व एवं परब्रह्मत्व का गान करते हुए कहते हैं श्रीराम्! आप पुराण पुरुषोत्तम

हैं, दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं। जो लोग आप में भक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे [32]

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च।।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, 1/4/0
2. वही, 7/111/11
3. वही, 2/1/7
4. वही, 1/15/16-17
5. वही, 1/15/20-21
6. वही, 1/15/2021
7. वही, 1/18/10-11
8. वही, 1/76/17
9. वही, 1/76/(17-19)
10. वही, 2/44/15-16
11. वही, 1/67/21
12. वही, 5/51 (38, 39)
13. वही, 5/51/39-44
14. वही, 6/18/23-11
15. वही, 4/24/27-28
16. वही, 4/24/32
17. वही, 6/18/33
18. वही, 6/117/17
19. वही, 6/111/(11-14)
20. वही, 6/111/(10-12)
21. वही, 6/117/1
22. वही, 6/117/8-9
23. वही, 6/112/(14-15)
24. वही, 6/117/13-13
25. वही, 6/119/32
26. वही, 6/119/31
27. वही, 7/110/12
28. वही, 7/106/17
29. वही, 7/109/7
30. वही, 6/128/32
31. वही, 6/128/102
32. वही, 6/117/31

14

वाल्मीकि रामायण का विश्व मानवता (मानव संस्कृति) को अवदान

महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य के विषय में यह कल्पना, अज्ञान अथवा भ्रम मात्र है कि श्रीरामायण का अवतरण केवल आर्य राष्ट्र और आर्य जाति के मानवों और मानवीयों (स्त्रियों) के लिए हुआ है। कारण यह है कि इसमें श्रीरामकथा के रूप में मानवता की कथा कही गयी है। एक स्थल पर रूसी विद्वान वरान्निकोव की रामायण के सन्दर्भ में कुछ ऐसी ही उद्भावना है[1] "वाल्मीकि रामायण' के द्वारा रामचरित के माध्यम से विश्व राष्ट्रों और विश्व मानवों को मानवता का उपदेश दिया गया है, मानव संस्कृति का पाठ पढ़ाया गया है। मानव कौन है? और वह मानवता की क्रान्ति कैसे कर सकता है? इन्हीं दो जिज्ञासाओं का समाधान श्रीराम और वाल्मीकिरामायण में है, अर्थात् राम जैसा नर मानव और राम के जैसे चरित्र से मानवता की प्राप्ति हो सकती है"। मानवता के इसी आदर्श को पाने के लिए ही महर्षि को एक ऐसे मानव या महामानव की खोज थी जो उनके आदिकाव्य का महानायक बन सके। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि ने अपने कालजयी अमर महाकाव्य के शुभारम्भ में ही नारदजी से प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि देवर्षि! इस समय संसार में वह कौन-सा पुरुष, मानव या महामानव है जो गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्य वक्ता और दृढ़ प्रतिज्ञ है? सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हित-साधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन सुन्दर, पुरुष कौन है? मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान और किसी की भी निन्दा न करने वाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं[2]?

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।

यहाँ महर्षि वाल्मीकि की चिन्ता दर्शनीय है, वे अपने महाकाव्य का नायक किसी साधारण राजा, महाराजा या किसी ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति (मानव) को नहीं बनाना चाहते जो किसी देश, काल, परिस्थिति तक सिमटकर रह जाये अथवा जिसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की छाप किसी सीमित दायरे में सिकुड़कर रह जाये। वे तो एक ऐसे मानव, महामानव, चक्रवर्ती सम्राट को अपने महाकाव्य का महानायक बनाना चाहते हैं जो समस्त गुणों का पुंजीभूत स्वरूप हो जिसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सौंधी गंध से न केवल मानव संस्कृति, मानवजाति या विश्व मानवता ही सुगन्धित हो अपितु जो तीनों लोकों को भी प्रभावित कर सके। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि नारदजी से पूछते समय ही कहते हैं **कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके।** यहाँ महर्षि ने यह नहीं कहा कि **कोन्वस्मिन् साम्प्रतं आर्यावर्ते।** वे चाहते तो ऐसा ही प्रश्न करते क्योंकि आर्यावर्त या भारतवर्ष की पावन माटी में ही वे इस महाकाव्य की रचना कर रहे थे तथा प्रमुख रूप से यहाँ की ही मानवजाति को मानव संस्कृति का संदेश देते, लेकिन ऐसा करना उन्हें अभीष्ट नहीं था। वे तो इस भूमण्डल पर निवास करने वाली सम्पूर्ण मानवजाति या मानवता को संदेश देना चाहते थे। किंवा, महर्षि वाल्मीकि का दृष्टिकोण यहीं तक सीमित नहीं है, वे तो यहाँ तक पूछते हैं कि ऐसा कौन-सा पुरुष है जो सभी प्राणियों का हितकारक है **सर्वभूतेषु को हितः।** सम्पूर्ण मानवता तथा सम्पूर्ण प्राणियों का हितचिन्तक कोई विराट व्यक्तित्व ही हो सकता है। अस्तु इस विराट व्यक्तित्व, महामानव या महानायक के विषय में कोई साधारण व्यक्ति नहीं बता सकता **महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरः।** इसे तो महर्षि नारद ही बता सकने में समर्थ हैं, क्योंकि महर्षि वाल्मीकि तो यहाँ केवल ऐसे महामानव के विषय में जानना चाहते हैं जो इस लोक के सभी प्राणियों का हितकारक तथा मानवता का रक्षक हो। महर्षि नारद तो त्रिलोकज्ञ हैं तीनों लोकों की सारी बातें, भूत, भविष्य, वर्तमान वे सब जानते हैं, वही सभी प्राणियों के हितरक्षक तथा महनीय व्यक्तित्व को जानने में समर्थ हैं। **श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।** ऐसा सुनकर नारद जी ने कहा मुझे आपने जिन दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है, उससे युक्त पुरुष को मैं विचार करके कहता हूँ। पुनः उन्होंने वाल्मीकि जी के महाकाव्य के महानायक एवं उस महामानव के सन्दर्भ में विस्तार से बताया जिसके द्वारा इस धरा पर मानवता का संदेश दिया गया[3]

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।।

पुनः इन्हीं इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न प्रभु श्रीराम के **रक्षिता जीवलोकस्य, सर्वलोकप्रियः** एवं **सर्वगुणोपेतः** आदि विविध गुणगणों का गान 20 श्लोकों के अन्तर्गत करते हुए वाल्मीकि रामायण का उद्घाटन किया गया। यही श्री अवधेश कुमार, कौसल्या प्राणाधार, जानकीजीवन, दैत्यनिपीडन, भक्तजनरंजन, दुष्टनिकंदन, जगहितकारी, शरणागतभयहारी, भगवान श्रीरामचन्द्र जी के परम मंगलमय पदपद्मों से जो इस देवदुर्लभ वसुन्धरा को पावन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा स्थापन द्वारा कर्तव्याकर्तव्य विमूढ़ संसार का पथ-प्रदर्शन कराना तथा मानव संस्कृति की प्रतिष्ठापना कर मानवता का उद्घोष करना था।

यहाँ ध्यातव्य है कि संस्कार मानवों में ही होते हैं देवताओं में नहीं। संस्कार मानव को सुसंस्कृत, सुसज्जित एवं श्रेष्ठ बनाने के लिए होते हैं। देवता तो इससे ऊपर होते हैं। उन्हें सुसंस्कृत करने की आवश्यकता तो होती नहीं है। अतः ये संस्कार मानवों के लिए ही हैं। इस प्रकार उक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि जो संस्कारपूर्ण होते हुए भी मानव को सजाते हैं अर्थात् मानव को मानव या श्रेष्ठ मानव बनाते हैं तथा एक मानव से दूसरे मानव का समन्वय स्थापित करते हैं, मिलाते हैं उनके समुच्चय को मानव संस्कृति या मानवता कहा जाता है।

इस सृष्टि की विविधता के बीच देव, मनुज और दनुज ये तीन मिलते-जुलते प्राणी हैं। इनमें जो भेद है वह गुण और कर्म अथवा आचार एवं विचार का है। सामाजिक मान्यता के अनुसार असुर से मानव, मानव से देवता श्रेष्ठ माने जाते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में महर्षि वाल्मीकि एवं उनकी रामायण का दृष्टिकोण कुछ पृथक् ही है। सैद्धान्तिक रूप से देवताओं का वर्चस्व स्वीकार करते हुए श्री रामायण ने व्यवहार क्षेत्र में मानव एवं मानवत्व को अधिक महत्व दिया है। देव, दनुज, गन्धर्व, किन्नर, असुर, नाग आदि किसी भी प्राणी से अवध्य होने का वरदान प्राप्त करने वाले असुरराज रावण को मारने के लिए भगवान विष्णु को मानव रूप में ही प्रकट होना पड़ा। यही दशरथ पुत्र मानव राम के मानवत्व ने दानव रावण के दानवत्व का विनाश किया। यही नहीं मानव रूप में राम के अवतरित होने पर अनेकों देवताओं ने मानव राम तथा मानवता के सहयोग हेतु मनुष्य रूप में ही अंशावतार ग्रहण किया[4]

नवनागसहस्त्राणि ययुरास्थाय वानराः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः।।

किम्बहुना, श्रीराम स्वयं अपने को मनुष्य स्वीकार करते हैं **आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।**[5] इसी मानवत्व, मानव संस्कृति या मानवता की प्रतिष्ठापना

के लिए ही महर्षि वाल्मीकि ने देवत्व को मानवत्व के धरातल पर लाकर असुरत्व को भी समाप्त करके मानवत्व के ही रूप में संस्कारित करते हुए मानव संस्कृति या मानवता का उद्घोष किया है।

समष्टिभूत मानव संस्कृति की व्यष्टि मानव या व्यक्ति है। सम्पूर्ण संस्कृति के लिए मानव या एक-एक व्यक्ति का संस्कारिक अथवा चरित्रवान् होना परमावश्यक है। आदर्श चरित्र सर्जन की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण निःसन्देह एक अद्वितीय श्रेष्ठ ग्रंथ है जो उत्तम चरित्रवान् नागरिकों के निर्माण में योगदान करता है। व्यक्ति के अन्तःकरण एवं बाह्याचार दोनों ही पक्षों को उत्कृष्ट बनाने के दृष्टांत रामायण में सुलभ हैं। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, दिनचर्या, विद्या-व्यसन, सुरुचिपूर्ण व्यवस्था, विवेकमय कर्मकौशल तथा लोक एवं शास्त्र दोनों का व्यवहारिक समन्वय, जो व्यक्ति के बाह्याचार के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं, रामायण में सर्वत्र दर्शनीय हैं। इसी प्रकार मानव के अन्तःकरण के भी जितने सद्गुण एवं सद्भाव हैं, यथा त्याग, क्षमा, शील, धर्मपरायणता, निर्भीकता, विनम्रता, सेवा, संयम एवं साहस आदि सभी रामायण में दृष्टिगोचर पदे-पदे होते हैं। दूसरे शब्दों में, मानव संस्कृति के इन्हीं पक्षों को उजागर करने के लिए ही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता आदि विभिन्न सत्पात्रों के माध्यम से ही आदर्श मानव या व्यक्ति के स्वरूप को महर्षि वाल्मीकि ने निरूपित किया है।

मानव, जन्म लेते ही परिवार एवं समाज के विभिन्न संबंधों से संबंधित हो जाता है। सम्पूर्ण जीवन भर माता-पिता, पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी, सास-बहू आदि विविध संबंधों की कसौटी पर खरे उतरने के लिए तथा मर्यादित जीवन-यापन करने के लिए उसे शिक्षा, संस्कार एवं सद्गुणों को परिपालन करना होता है। मानव के इन संबंधों को स्वस्थ, सुव्यवस्थित एवं मर्यादित बनाए रखने के लिए वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ में जिन संस्कारों और विश्वासों की व्यंजना करायी है, उनमें अध्यात्मपरक जीवन दृष्टि के आधार पर एक ऐसे स्वस्थ, सुन्दर ज्ञानमय, प्रेमस्निग्ध और कर्मनिष्ठ परिवार एवं समाज की व्यवस्था झलकती है जो **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** के आदर्श की ओर उन्मुख है। इसमें साधारण नर-नारियों के आचरण करने योग्य पारिवारिक धर्म, सामाजिक धर्म और पूर्ण मानवतावाद के अनुकूल अन्यान्य आदर्शों को सुचारू ढंग से प्रतिपादित किया गया है। आदर्श शिष्य, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक एवं आदर्श सखा आदि सभी मानवीय संबंधों के सम्पूर्ण आदर्शों का श्रीरामायण में प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी महर्षि वाल्मीकि ने मानवीय पक्ष का समर्थन एवं प्रतिपादन किया है। कल्याणकामी समाज के लिए मानवीय संवेदना, अनुशासन एवं मर्यादा की आवश्यकता होती है। किन्तु समग्र मानवता के निर्माण के लिए इससे भी अधिक भावात्मक एकता की आवश्यकता है जो सुदूर अंचलों में बसे विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक सूत्र में बांधती है, एक दूसरे को सुख-दुख और आशा-निराशा के क्षणों में अनुभूति की समान भागीदारी बनाती है। मानवता की सबसे बड़ी पहचान यह है कि सहानुभूति सदैव दलितों, शोषितों, समाज के पिछड़े एवं दुर्बल वर्गों तथा व्यक्तियों के पक्ष में ही वाल्मीकि के राम ने निषाद, शबरी, गीध, किरात तथा आदिवासी वर्गों के जनों को गले लगाया एवं सुग्रीव और विभीषण जैसे संत्रस्त लोगों का कष्ट हर लिया। इस प्रकार सामाजिक विषमता को दूर करना, समरसता को स्थापित करना तथा मानवता को उजागर करना ही वाल्मीकि रामायण का प्रमुख उद्देश्य एवं अवदान है।

वाल्मीकि रामायण का विश्व मानवता को अवदान-मानव संस्कृति, की आधार भित्ति है समन्वय। समन्वय 'सम' और 'अन्वय' दो शब्दों के योग से निष्पन्न है जिससे सम का अर्थ है 'संस्कारपूर्ण' और अन्वय का अर्थ है 'मिलाना' या 'जोड़ना'। किन्हीं दो पदार्थों को मिलाने या जोड़ने से एक तीसरा परिणाम प्राप्त होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्राप्त परिणाम गुणात्मक ही हो, ऋणात्मक भी हो सकता है। इसलिए जहाँ दो पदार्थों का अन्वय गुणात्मक परिणाम देता है, अर्थात् संस्कारपूर्ण गुणात्मक परिणाम होता है उसे समन्वय कहते हैं रामायण के अवदान में यही समन्वयात्मक सूत्र निहित है जो मानव संस्कृति को उत्कृष्टता की कोटि में पहुंचाता है। मानव संस्कृति अगाध महासागर सदृश है जिसके अन्तर्गत देव-दनुज, नर-वानर, पशु-पक्षी एवं ऊंच-नीच आदि सभी का समन्वय है। श्रीराम का चरित्र यहां सेतु स्वरूप है। सेतु का कार्य है मिलाना, जोड़ना या समन्वय।

महर्षि वाल्मीकि ने इस आदर्श सेतु के माध्यम से उक्त सभी संस्कृतियों को मानव संस्कृति में समन्वित करा दिया है। मानव संस्कृति की महत्ता को स्थापित करने के लिए ही स्वयं भगवान महाविष्णु एवं भगवती महालक्ष्मी ने श्री राम और सीता के रूप में अवतार लिया। अन्य सभी देवताओं ने अंशावतार ग्रहण कर नर-वानर आदि विविध रूपों में मानव संस्कृति में योगदान दिया। गीध, जटायु एवं संपाती ने अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य से सहयोग किया। भक्तप्रवर हनुमान एवं मित्र सुग्रीव जैसे वानरों ने विविध भांति सेवा तथा सहायता की। किंवा, असुरकुलोत्पन्न विभीषण ने तो मानवता एवं मानव संस्कृति की रक्षा के लिए इसके विरोधी तथा

सहोदर भ्राता राक्षसराज रावण का साथ तक छोड़ दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुर-असुर, पशु-पक्षी, वानर भालू एवं अन्य चराचर सभी मानवी संस्कृति में समन्वित होकर किसी-न-किसी रूप में इसके उत्कर्ष, संवर्धन एवं प्रतिस्थापन में ही संलग्न हैं।

वाल्मीकि रामायण को जिस किसी भी कोने से झांकने का प्रयास करें सर्वत्र मानव-संस्कृति ही दृष्टिगोचर होती है। किम्बहुना, मानवता का अपमान वाल्मीकि एवं उनके नायक को कदापि सह्य नहीं है। मानवता या मानव संस्कृति का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार से विरोध एवं अपमान करने वाले को दंडित होना ही पड़ा है। चाहे वह देव हो, दनुज हो, वानर हो या अन्य कोई। राक्षसराज रावण प्रभृति अन्यान्य राक्षसों को काल के गाल में समाहित होना पड़ा। मानव संस्कृति को लांछित करने वाले वानरराज बालि को श्रीराम के हाथों मृत्यु मुख में जाना पड़ा। यह है श्री रामायण का सांस्कृतिक अवदान मानव संस्कृति का आदर्श स्वरूप।

मानव संस्कृति की इसी समन्वयात्मक दृष्टि ने उत्तर-दक्षिण की धुरी को मिलाकर समग्र देश को एकता के सूत्र में पिरोया। श्रीराम ने रामेश्वरम् की स्थापना द्वारा न केवल शैव और वैष्णवों को आपस में मिलाया अपितु इनमें साम्प्रदायिक और धार्मिक सौहार्द्र भी स्थापित किया। राम ने अयोध्या से चलकर भारतवर्ष के सुदूर विभिन्न प्रान्तों, धर्मों एवं स्थानों के लोगों को आत्मसात करते हुए उत्तर-दक्षिण की दूरी को समाप्त किया तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुदृढ़ बनाया। समुद्र पर सेतु बनाकर लंका में आसुरी शक्ति के विनाश के साथ-साथ मानव संस्कृति का उद्घोष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करते हुए वैश्विक मानवता को भी संजोने, सहेजने एवं संरक्षित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार मानव संस्कृति की सम्पूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ भाव-ऋद्धियों के समन्वित होने के कारण ही रामायण को आदि काव्य, महाकाव्य और उससे आगे बढ़कर विश्वकाव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अन्ततः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि रामायण विश्व साहित्य का एक ऐसा ग्रंथरत्न है जो आसुरी संपदा का संहार, अमानवीयता का विरोध, सामाजिक विषमता को अस्वीकार करता है तथा सक्रिय, संस्कारिक एवं आदर्श मानवतावाद या मानव संस्कृति का आश्रयदाता है। वाल्मीकि रामायण, मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण महाकाव्य है जो मानव को अच्छा प्राणी बनने के लिए प्रेरित करता है। **श्रीरामदिवद् वर्तितव्यं न तु क्वचिद् रावणादिवत्**। यही कारण है कि, इसका महत्व राष्ट्र सीमाओं में न बंधकर विश्व के विराट रूप को धारण करता है। विश्व में श्रीराम से बड़ा कोई आदर्श मानव नहीं है और समग्र मानव जाति को एक सूत्र

में बाँधकर मानवता या मानव संस्कृति का उद्घोष करने वाला श्री वाल्मीकि रामायण से बड़ा कोई ग्रंथ नहीं है।

संदर्भ

1. श्रीरामांक पृ.
2. वाल्मीकि रामायण 1/1/2-4
3. वाल्मीकि रामायण 1/1/8
4. वाल्मीकि रामायण 6/128/32
5. वाल्मीकि रामायण 6/117/11

15

वाल्मीकि रामायण में प्रबन्धशास्त्र

कोऽन्वस्मिन साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् की जिज्ञासा ने महर्षि वाल्मीकि को उनके आदिकाव्य रामायण की रचना के लिए एक ऐसे आदिपुरुष, महापुरुष, महानायक प्रभु श्रीराम को अवतरित करा दिया जिसमें विश्व के सभी सद्‌गुण और आदर्श पुंजीभूत रूप में अवस्थित एवं व्यवस्थित हैं। श्रीराम विश्व के आदर्श हैं। इन्हीं आदर्शों की प्राप्ति के लिए मनुष्य जाति रामचरित्र को बार-बार सुनती और पढ़ती है। वस्तुतः रामचरित्र से प्राप्त भावनाएं, चिन्तनधाराएं और विचार एक ऐसे स्तर पर पहुँचे हैं जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं तथा जो सारी दुनिया को जाग्रत करने में पूर्ण समर्थ हैं। रामचरित, व्यक्ति चरित नहीं, वह समष्टिचरित-विश्वचरित है। इसी विलक्षण एवं शक्तिशाली चरित्र-चित्रण के द्वारा महर्षि वाल्मीकि की रामायण, मनुष्यमात्र को अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में मार्गदर्शन कर उसे समुन्नत बनाते हुए जहाँ उसका वैयक्तिक प्रबन्धन कर रही है वहीं उससे जुड़े जीवन के विविध पक्षों के प्रबन्धन में भी उपादेय एवं वरेण्य है। किम्बहुना, रामायण में वैयक्तिक प्रबन्धन, पारिवारिक प्रबन्धन, सामाजिक प्रबन्धन, नगरीय प्रबन्धन, ग्राम्य प्रबन्धन, कृषि एवं व्यापार प्रबन्धन, राज्य प्रबंधन, राष्ट्र प्रबन्धन आदि जो भी प्रबन्धशास्त्र या प्रबन्धन के विषय हो सकते हैं, उन सभी प्रबन्धनों की रामायण में वाल्मीकि ने सुव्यवस्थित व्यवस्था पदे-पदे वर्णित की हैं।

वस्तुतः वाल्मीकि रामायण जहाँ एक आदिकाव्य, महाकाव्य, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, काव्यशास्त्र एवं साहित्यशास्त्र का मानक एवं आदर्शभूत ग्रन्थ है, वहीं दूसरी ओर यह एक बहुत बड़ा प्रबन्धशास्त्र है। रामायण में रावण वध ही प्रमुख लक्ष्य हैं। इसी लक्ष्य की प्राप्ति में श्रीराम की समस्त योजनाएं कार्य-पद्धतियाँ एवं प्रबन्धन हैं। प्रारंभ से ही इसी लक्ष्य की पूर्ति में रामायण का समस्त प्रबन्धन दृष्टिगोचर होता है। राक्षसराज रावण, सुर-असुर, यक्ष-किन्नर एवं गन्धर्व

आदि समस्त प्राणियों से अवध्य था इसलिए उसके वध के लिए ऐसा प्रबन्धन करना था जो इनसे भिन्न कोई प्राणी हो।

एतदर्थ नर और वानर ही ऐसे दो प्राणी बचे थे। इसीलिए रामावतार के साथ ही सभी देवतागण अपने अंशों से नर और वानर के विभिन्न स्वरूपों में अंशावतार ग्रहण कर उस लक्ष्य की दिशा में प्रथम एवं अचूक प्रबन्धन करते हैं। इसी प्रथम एवं पूर्व प्रबन्धन से रामायण के अग्रिम प्रबन्धशास्त्र का सूत्रपात होता है।

रावण बहुत बड़ा प्रतापी, निखिलशास्त्रज्ञ एवं युद्ध विद्याविशारद था तो श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को भी कुलगुरु वशिष्ठ के द्वारा सकलविद्याव्रतस्नात बनाया गया। युद्धविद्या की समस्त कलाएं सीखनी थीं इसके लिए राजा दशरथ के न चाहते हुए भी अपनी मख रक्षा के बहाने विश्वामित्र जी श्रीराम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाकर युद्ध विद्या की सम्पूर्ण कलाओं में निष्णात् किया। इस स्थल का प्रबन्धशास्त्र दर्शनीय है।

हम सभी जानते हैं वसिष्ठ, महाराजा दशरथ के कुलगुरू थे। विश्वामित्र से उनका विरोध भी था। वसिष्ठ चाहते तो राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ नहीं भेजते। दशरथ यही चाहते भी थे, किन्तु ऐसा न करके उन्होंने विश्वामित्र के साथ मख रक्षा हेतु जाने के लिए महाराज से निवेदन किया। वसिष्ठ के द्वारा ऐसा क्यों किया गया? इसके पीछे रावणवध का ही लक्ष्य उन्हें भी अभीष्ट था। इसी लक्ष्य की पूर्ति में ऐसा प्रबंधन उनके द्वारा किया गया। साथ ही यह भी प्रबन्धन द्रष्टव्य है कि राम और लक्ष्मण को ही विश्वामित्र के साथ भेजा, क्योंकि भविष्य में राम और लक्ष्मण को ही रावण के साथ युद्ध करना था। अतः इन्हीं दोनों को विश्वामित्र जैसे श्रेष्ठ आचार्य द्वारा युद्धविद्याकौशल में निष्णात् करने का प्रबन्ध किया गया। वस्तुतः उस समय वसिष्ठ और विश्वामित्र ही प्रबन्धशास्त्र के (प्रोफेसर) आचार्य थे। इनका प्रबन्धन और नियोजन ही सर्वोत्कृष्ट था। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को युद्धकला की सम्पूर्ण विद्या सिखाने के साथ ही उसका प्रायोगिक परीक्षण भी सुबाहु, मारीच और ताटकावध से कराते हैं, क्योंकि उन्हें पता था कि भविष्य में इसी प्रकार के दुष्ट राक्षसों खर-दूषण तथा शूर्पणखा के साथ युद्ध होना है। विश्वामित्र का प्रशिक्षण एवं प्रायोगिक परीक्षण उनके कुशल प्रबन्धन का ही सूचक है। रावण जैसे असुरराज से युद्ध के पूर्व श्रीराम को पूर्णरूपेण शक्तिशाली, सामर्थ्यशाली एवं परम तेजस्वी के रूप में शिक्षित प्रशिक्षित एवं परीक्षित करके वे देख लेना चाहते हैं कि श्रीराम, रावण से बहुविध एवं सर्वविध शक्तिशाली तथा समर्थ हैं कि नहीं? इसलिए सीता स्वयंवर में रावण सहित भूमण्डल के सभी शक्तिशाली सम्राटों तथा राजा जनक के समक्ष जहाँ

राम से धनुर्भंग कराकर सभी का मान-मर्दन कराते हुए विश्वविजयी घोषित करवाते हैं। वहीं परशुराम का तेजोभंग कराकर इस विषय में कोई भी कोर-कसर नहीं रहने देते कि श्रीराम से बड़ा इस भूमण्डल एवं त्रिलोक में कोई भी सर्वशक्तिमान नहीं है।

रामायण में कैकेयी एक ऐसा पात्र है जिनकी सभी निन्दा करते हैं, किन्तु विचारणीय है कि कैकेयी अनिन्द्य सुन्दरी हैं, वीरांगना हैं, महाराज दशरथ के साथ देवासुर संग्राम में युद्ध करते हुए रथ के पहिये की कील टूट जाने पर अपनी उँगली लगाकर रथ को चलाती हैं तथा महाराज के प्राणों की रक्षा करती हैं। ऐसी कैकेयी वहीं प्राणातिप्रिय राम को वनवास दिलाकर महाराज के प्राण लेंगी। वस्तुतः कैकेयी वह सामान्य महिला या महारानी नहीं हैं जो केवल महलों या रनिवासों में रहकर मात्र सुखोपभोग करें। वह तो एक क्षत्राणी, वीरांगना, युद्धकला में निष्णात्, राष्ट्रनीति, राजनीति में सक्रिय चिन्तन एवं योगदान हेतु सतत् संलग्न तथा चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ की सर्वप्रिय रानी थीं। जो देवासुर संग्राम में एक वीरांगना के रूप में युद्धरत थीं वे क्या देवताओं और असुरों की राजनीतिक स्थिति से सुपरिचित नहीं होंगी? वह क्या भूमण्डल पर व्याप्त राक्षसराज रावण के आतंक से भिज्ञ नहीं थीं, रावण के आतंक से त्राहि-त्राहि कर रही पृथिवी, गौ, ब्राह्मण तथा ऋषियों-मुनियों की पीड़ा से पीड़ित नहीं रही होंगी? उन्हें क्या अपने वृद्ध पति महाराज दशरथ के साम्राज्य के इर्द-गिर्द मंडराते रावण प्रभृति अन्य असुरों के आतंक का भय नहीं सताता रहा होगा? निःसन्देह कैकेयी ही इस पीड़ा से पीड़ित थीं। वह एक कुशल प्रबन्धशास्त्री थीं। वे यह जानती थीं कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम ही रावण का वध करने में सर्वसमर्थ है, उसे इस दिशा में नियोजित करने हेतु कैसे प्रबन्धन किया जाय? क्योंकि राम तो माताओं, अयोध्यावासियों एवं महाराज दशरथ के सर्वाधिक प्रिय हैं। सामान्य स्थिति में राम, रावण के वध हेतु नहीं जायेंगे। एतदर्थ ऐसी कोई व्यवस्था या प्रबंधन किया जाय जिसके द्वारा राम इस महान कार्य के लिए प्रेरित और नियोजित हों। पुनश्च, कैकेयी को इस दिशा में देवताओं एवं सरस्वती आदि का सहयोग भी प्राप्त हुआ तथा श्रीराम का चौदह वर्ष का वनवास हो गया। श्रीराम का वनवास यदि न हुआ होता तो रावण का वध न होता। **यह तो मात्र कैकेयी का प्रबन्धशास्त्र है जो इस दिशा में सम्पूर्ण घटनाक्रम को व्यवस्थित कर दिया।**

श्रीराम तो संसार के सभी कार्यों के आयोजक, नियोजक, प्रेरक, संरक्षक, एवं प्रबन्धक हैं, वे तो समस्त प्रबन्धनों के प्रबन्धक, प्रवर्तक, प्रकृष्टोपकारक तथा प्रबन्धशास्त्र के आदि आचार्य हैं। वे न केवल इस भूमण्डल एवं लोक का ही प्रबंधन करते हैं, अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं त्रिलोकी के प्रबन्धक हैं।

प्राणिमात्र का सम्पूर्ण प्रबन्धन व्यवस्थापन एवं नियंत्रण उन्हीं के संकेत मात्र एवं इच्छामात्र से संचालित है। ऐसे लीलाधाम प्रभु श्रीराम चित्रकूट में 12 वर्षों तक रहकर विविध प्रकार का प्रबंधन किए। श्रीराम का प्रबन्धन अद्भुत है और-एक-ओर निषादराज को मित्र बनाया तो दूसरी ओर कोल, भील, किरात आदि वनवासी एवं आदिवासियों को अपना सहचर बनाया। एक ओर प्रतिदिन सुबह-शाम साधू-सन्तों की सभा कर विविध प्रकार की अध्यात्मिक भौतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चर्चाओं से राक्षसों की गतिविधियों का पता लगाया तो दूसरी ओर भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि-अनुसूया, सुतीक्ष्ण, शरभंग, अगस्त्य आदि ऋषियों से विविध प्रकार की शक्तियों एवं ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण किया। हनुमान एवं सुग्रीव से मिलकर जहाँ बहुत बड़ी वानरी सेना को अपने साथ कर लिया, वहीं दूसरी ओर ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध, कबन्ध, बालि, खर-दूषण एवं शूर्पणखा को दण्ड देकर जैसे रावण को यह सूचित कर दिया कि तुमसे भी शक्तिशाली इस धराधाम पर कोई व्यक्ति अवतरित हो चुका है। **यह सम्पूर्ण कार्य श्रीराम के कुशल प्रबन्धन का सुपरिणाम अथवा श्रीराम का अपना प्रबंधशास्त्र है।** किम्बहुना, सुग्रीव को मिलाकर बालि को मारा तथा सम्पूर्ण वानरी सेना प्राप्त की, विभीषण को मिलाकर रावण की सारी कमजोरियों का पता लगाकर उसका वध किया तथा सम्पूर्ण धरा के निर्विवाद चक्रवर्ती सम्राट बनकर रामराज्य की स्थापना की है। **यही श्रीराम का प्रबन्धन या प्रबन्धशास्त्र है तथा यही महर्षि वाल्मीकि एवं उनके प्रबन्ध रामायण का प्रबन्धन है जिसका सुपरिणाम रामराज्य।** वस्तुतः श्रीराम जैसे नायक, महानायक, महापुरुष, राष्ट्रनायक, वसुधाधिपति, अधिपति, प्रशासक, व्यवस्थापक एवं प्रबन्धक के होने पर अनीति, अन्याय, भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण, आतंक, ईर्ष्या-द्वेष, कलह आदि बुराइयों का सर्वनाश हो जायेगा। प्राणिमात्र में भाईचारा, एकता-अखण्डता, विश्वबन्धुत्व एवं शान्ति का साम्राज्य होकर सर्वत्र रामराज्य होगा। किन्तु, आवश्यक है इसके लिए श्रीराम जैसे कुशल प्रबन्धक एवं प्रबन्धशास्त्री की।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि प्रबन्धशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ आदि आचार्य हैं, रामायण प्रबन्धशास्त्र का आदि ग्रन्थ है तथा इसके महानायक प्रभु श्रीराम इस भूमण्डल, लोक एवं त्रैलोक्य के प्रबन्धन के आदिनायक एवं महाप्रबन्धक हैं। **श्रीरामायण में पदे-पदे प्रबन्धन या प्रबन्धशास्त्र की बातें विभिन्न पात्रों के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने करायी ही है, किन्तु प्रबन्धशास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्वों एवं तथ्यों को यदि एक स्थल पर देखना है तो अयोध्याकाण्ड के 100वें सर्ग में यह आद्यन्त दर्शनीय है। वैयक्तिक प्रबन्धन, पारिवारिक प्रबन्धन, सामाजिक**

प्रबन्धन, नगरीय प्रबन्धन, ग्राम्य प्रबन्धन, कृषि प्रबन्धन, व्यापार प्रबन्धन, आर्थिक प्रबन्धन, धार्मिक प्रबन्धन, राजनीतिक प्रबन्धन, नीतिगत प्रबन्धन, गुप्तचर व्यवस्था, राज्य प्रबन्धन एवं राष्ट्र प्रबन्धन आदि जितने भी प्रबन्धशास्त्र के और भी विषय हो सकते हैं, सभी प्रबन्धनों की जानकारी इस सर्ग में श्रीराम और भरत के कथनोपकथन में सुलभ हैं। चित्रकूट में श्रीराम भरत से कुशल-प्रश्न के बहाने प्रबन्धशास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्वों को उजागर करते हुए विविध प्रकार से उपदेश करते हैं।

श्रीराम कहते हैं[1] सौम्य! तुम अभी बालक को, इसलिए परम्परा से चला आता हुआ तुम्हारा राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? तुम पिताजी की सेवा-सुश्रूषा करते हो न? जो धर्म पर अटल रहने वाले हैं तथा जिन्होंने राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया है, वे सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ कुशल से तो हैं न? तात! क्या तुम धर्म में सदा तत्पर रहने वाले विद्वान, ब्रह्मवेत्ता और इक्ष्वाकुकुल के आचार्य महातेजस्वी वसिष्ठ जी की यथावत पूजा करते हो? भाई! माता कौशल्या सुख से हैं? उत्तम संतान वाली सुमित्रा प्रसन्न हैं, और आर्या कैकेयी देवी भी आनन्दित हैं, जो उत्तम कुल में उत्पन्न, विनय सम्पन्न, बहुश्रुत, किसी के दोष न देखने वाले तथा शास्त्रोक्त धर्मों पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले हैं उन पुरोहित जी का तुमने पूर्वतः सत्कार किया है? हवन विधि के ज्ञाता, बुद्धिमान और सरल स्वभाव वाले जिन, ब्राह्मण देवता को तुमने अग्निहोत्र कार्य के लिए नियुक्त किया है वे सदा ठीक समय पर आकर तुम्हें क्या यह सूचित करते हैं, कि इस समय अग्नि में आहुति दे दी गयी और अब अमुक समय में हवन करना है? तात! क्या तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिता के समान आदरणीय वृद्धों, वैद्यों और ब्राह्मणों का सम्मान करते हो?

कच्चिद् देवान् पितृन् भृत्यान् गुरून् पितृसमानमपि।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणाश्चाभिमन्यसे।।

यह है श्रीराम का **पारिवारिक या वैयक्तिक प्रबन्धन।** श्रीराम की दृष्टि में आचार्य देवोभव, पितृदेवोभव, मातृदेवोभव का प्रबन्धन ही सर्वोत्कृष्ट है। इसीलिए वे भरत से पिताजी, तीनों माताओं, आचार्य वसिष्ठ, पुरोहितजी तथा यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की सर्वविध भरत द्वारा की जा रही सेवा एवं उनके कुशल-क्षेम के विषय में सर्वप्रथम जानकारी प्राप्त करते हैं। अन्ततः देवों, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, पिता के समान आदरणीय वृद्धों, वैद्यों तथा ब्राह्मणों के प्रति उनके द्वारा किये जा रहे सेवा-सुश्रुषा एवं आदर-सत्कार की गम्भीरता से जानकारी प्राप्त करते हैं। श्रीरामजी के प्रबन्धन में यह बात प्रथम एवं विशेष रूप से ध्यातव्य है कि जिस प्रमुख व्यक्ति, मुखिया या

प्रशासक की घर परिवार की व्यवस्था, आन्तरिक स्थिति सुदृढ़, सुव्यवस्थित एवं स्वस्थ नहीं होगी, उसका बाह्य एवं अन्य किसी प्रकार का कोई प्रबन्धन सुपरिणाम दायी नहीं हो सकता। अस्तु उपर्युक्त श्रेष्ठजनों की प्रसन्नता ही व्यवस्थात्मक इकाई में प्रबन्धन की आधारभित्ति है। **इसी प्रबन्धन से ही व्यक्ति का आन्तरिक एवं बाह्य प्रबन्धन तथा जीवन भी सर्वविधि सफल होता है।**

अभिवादनशीलस्य नित्यंवृद्धोपसेविनः
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्ः।

श्रीराम जी भली-भाँति इस तथ्य को अमल में लाने का निर्देश करते हैं, क्योंकि इसके बिना आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि नहीं हो सकती तथा समाज में उस प्रत्येक व्यक्ति को जिसे ऊँचाइयाँ प्राप्त करनी हैं तथा वे लोग जो ऊँचाई पर प्रतिष्ठित हैं, उन्हें अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए किम्बहुना, निरन्तर ऊँचाई पर अग्रसर होने के लिए भी श्रीराम जी के इस पारिवारिक प्रबन्धन को शिरोधार्य करना होगा।

किसी परिवार, समाज, संस्था, राज्य या राष्ट्र के सम्यक् एवं कुशल संचालन हेतु इसके प्रमुख व्यक्ति, मुखिया या प्रशासक को किन-किन दृष्टियों से प्रबन्धन करना होता है, किन आयामों पर सूक्ष्म निगरानी रखते हुए प्रबन्ध करना आवश्यक होता है, उन सारे प्रबन्धकीय बिन्दुओं की ओर श्रीराम भरत को निर्दिष्ट करते हैं। किसी भी राज्य या राष्ट्र का संचालन अच्छे मंत्रियों की नियुक्ति, राजदूतों की नियुक्ति, उत्तम सेनापतियों की नियुक्ति, सैनिकों एवं कर्मचारियों को समय पर वेतन देना, गुप्तमंत्रणा, गोपनीयता बनाये रखना, सुविचारित एवं पूर्व विचारित योजना का सफल निष्पादन आदि के उत्तम प्रबन्धन द्वारा ही संभव है।

श्रीराम भरत से पूछते हैं[2] तात! क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मंत्री बनाया है। रघुनन्दन! अच्छी मंत्रणा ही राजाओं के विजय का मूल कारण है। वह तभी सफल होता है जब नीतिशास्त्र निपुण, मन्त्रिशिरोमणि आमात्य उसे सर्वथा गुप्त रखें। क्या तुम सहस्त्रों मूर्खों के बदले एक पण्डित को ही अपने पास रखने की इच्छा रखते हो? क्योंकि विद्वान पुरुष ही अर्थसंकट के समय महान कल्याण कर सकता है। यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खों को अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसर पर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती। यदि एक मंत्री भी मेधावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। तात! तुमने प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों

को मध्यम और छोटी श्रेणी के लोगों को छोटे कामों में नियुक्त किया है न? जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप-दादों के समय से ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों ऐसे आमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न?

राजकीय प्रबन्धन में सुयोग्य मंत्रियों की नियुक्ति उनकी मंत्रणा तो राजाओं के विजय का मूल कारण है, किन्तु राजा के निर्णयों की गोपनीयता, गुप्त मंत्रणा तथा गुप्तचर व्यवस्था का भी अहं अस्तित्व है। श्रीराम कहते हैं[3] भरत! कोई भी गुप्त मंत्रणा दो से चार कानों तक ही गुप्त रहती है, छः कानों में जाते ही वह फूट जाती है। अतः मैं पूछता हूँ कि तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो मंत्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मंत्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाती हो? रघुनन्दन! जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत बड़ा हो, ऐसे कार्य निश्चय करने के बाद तुम उसे शीघ्र प्रारंभ कर देते हो न? उसमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सब कार्य पूर्ण हो जाने पर अथवा पूरे होने के समीप पहुँचने पर ही दूसरे राजाओं को ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रम को वे पहले ही जान लेते हैं? तात! तुम्हारे निश्चित किए हुए विचारों को तुम्हारे या मन्त्रियों को प्रकट करने पर दूसरे लोग तर्क और युक्तियों द्वारा जान नहीं लेते हैं? अर्थात् तुमको और तुम्हारे आत्मात्यों को दूसरों के गुप्त विचारों का पता लगता रहता है न?

गुप्तचर व्यवस्था का उत्तम प्रबन्धन न होने पर शासक को बहुत हानि उठानी पड़ती है। श्रीराम कहते हैं[4] जो साम-दाम आदि उपायों के प्रयोग में कुशल, राजनीतिशास्त्र का विद्वान्, विश्वासी, भृत्यों को फोड़ने में लगा हुआ, शूर (मरने से न डरने वाला) तथा राजा के राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाला है ऐसे पुरुष को जो राजा नहीं मार डालता है, वह स्वयं उसके हाथों मारा जाता है। इसलिए हे भरत! क्या तुम शत्रुपक्ष को अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देखभाल या जाँच-पड़ताल करते रहते हो? शत्रु-दमन जिन शत्रुओं को तुमने राज्य से निकाल दिया है, वे यदि फिर लौटकर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? इस प्रकार गुप्तचर व्यवस्था के उत्तम प्रबन्धन पर जोर देते हुए श्रीराम पुनः कहते हैं भरत! तुमने जिसे राजदूत के पद पर नियुक्त किया है वह पुरुष अपने ही देश का निवासी, विद्वान्, कुशल प्रतिभाशाली और जैसा कहा जाय, वैसी ही बात दूसरे के सामने कहने वाला और सद्-सद्विवेकयुक्त है न?

इसी प्रकार किसी राज्य के उत्तम प्रबन्धन के लिए जहाँ **मन्त्रिपरिषद का प्रबन्धन एवं गुप्तचर व्यवस्था का प्रबन्धन** अति आवश्यक है। वहीं उसका **सैन्य प्रबन्धन** भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं धातव्य है। उत्तम सैन्य प्रबन्धन के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की ओर भरत का ध्यान आकृष्ट करते हुए श्रीराम कहते हैं[5] क्या तुमने सदा संतुष्ट रहने वाले, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान, पवित्र, कुलीन एवं अपने में अनुराग रखने वाले सत्कर्मदक्ष पुरुष को ही सेनापति बनाया है? तुम्हारे प्रधान-प्रधान योद्धा (सेनापति) बलवान, युद्धकुशल और पराक्रमी तो हैं? क्या तुमने उनके शौर्य की परीक्षा कर ली है? तथा क्या वे तुम्हारे द्वारा सत्कारपूर्वक सम्मान पाते हैं?

आज सम्पूर्ण राष्ट्र में, राज्य में, समाज में तथा प्रायः किसी भी संस्था में जो सबसे बड़ा विभेद, विसंगति, असमानता, पक्षपात एवं शोषण है वह है कर्मचारियों के वेतन के सन्दर्भ में। इसी के कारण नियोक्ता/प्रशासकों एवं कर्मचारियों में विरोध एवं तनाव का वातावरण सर्वत्र व्याप्त है। इसका समुचित प्रबन्धन न होना ही व्यापक असंतोष, वैमनस्य एवं विरोध का कारण है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम कितनी सूक्ष्मेक्षिका से इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हुए भरत से कहते हैं[6]

सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समय पर दे देते हो न? देने में विलम्ब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामी पर अत्यन्त कुपित हो जाते हैं और इसके कारण बड़ा भारी अनर्थ घटित हो जाता है। क्या, उत्तम कुल में उत्पन्न मंत्री आदि समस्त प्रधान अधिकारी तुमसे प्रेम रखते हैं? क्या वे तुम्हारे लिए एकचित होकर अपने प्राणों का त्याग करने के लिए उद्यत रहते हैं?

किसी भी राज्य या राष्ट्र की चतुर्दिक समुन्नत एवं समृद्धि के लिए आवश्यक है, उस राज्य में **कृषि, पशुपालन एवं व्यापार का उत्तम प्रबन्धन**। अयोध्या में इसके प्रबन्धन की जानकारी लेते हुए श्रीराम भरत से कहते है[7] तात! अयोध्या हमारे पूर्वजों की निवास भूमि है, उसका जैसा नाम है वैसा ही गुण है। उसके दरवाजे सब ओर से सुदृढ़ हैं। वह हाथी, घोड़ा और रथों से परिपूर्ण है। रघुनन्दन भरत! वहाँ नाना प्रकार के अनुष्ठान स्थल, अनेकानेक देवस्थान, पौंसले और तालाब जिसकी शोभा बढ़ाते हैं। जहाँ खेत जोतने में समर्थ पशुओं की अधिकता है, जहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती, जहाँ खेती के लिए वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, (नदियों के जल से ही सिंचाई हो जाती है), जो बहुत ही सुन्दर और हिंसक पशुओं से रहित है। जहाँ किसी तरह का भय नहीं है तथा नाना प्रकार की खानें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, वह अपना कोशल देश धन-धान्य से सम्पन्न और सुखपूर्वक बसा हुआ है न? उसकी भली-भाँति तुम रक्षा तो करते हो न?

तात! **कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे पीतिपात्र हैं न?** क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में संलग्न रहने पर ही यह लोक-सुखी एवं उन्नतशील होता है। उन वैश्यों को इष्ट की प्राप्ति कराकर और उनके अनिष्ट का निवारण करके तुम उन सब लोगों का भरण-पोषण तो करते हो न? जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं, वे जंगल तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हैं न? तुम्हारे पास दूध देने वाली गायें तो अधिक संख्या में हैं न? अथवा हाथियों को फँसाने वाली हथिनियों की तुम्हारे पास कमी तो नहीं है। तुम्हें हथिनियों, घोड़ों और हाथियों के संग्रह से कभी तृप्ति तो नहीं होती? क्या तुम्हारे दुर्ग (किले) धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र (मशीन) शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे-पूरे रहते हैं?

कृषि, पशुपालन एवं व्यापारिक प्रबन्धन के साथ ही **आर्थिक प्रबन्धन** की ओर भी ध्यान आकृष्ट करते हुए श्रीराम-भरत से कहते हैं[8] काम-काज में लगे हुए सभी मनुष्य निडर होकर तुम्हारे सामने तो नहीं आते? अथवा वे सब सदा तुमसे दूर तो नहीं रहते? क्योंकि कर्मचारियों के विषय में मध्यम स्थिति का अवलम्बन करना ही अर्थसिद्धि का कारण होता है। रघुनन्दन! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय बहुत कम है? तुम्हारे खजाने का धन अपात्रों के हाथ में तो नहीं चला जाता? देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रों के लिए ही तो तुम्हारा धन खर्च होता है न? भरत! तुम असमय में ही निद्रा के वशीभूत तो नहीं होते? समय पर जाग जाते हो न? रात के पिछले पहर में अर्थसिद्धि के उपाय पर विचार करते हो न? तुम अर्थ के द्वारा धर्म को अथवा धर्म के द्वारा अर्थ को हानि तो नहीं पहुँचाते? अथवा आसक्ति और लोभ रूप काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों में बाधा तो नहीं आने देते?

जिस समाज, राज्य, संस्था या परिवार में **न्याय और दण्ड का उचित प्रबन्धन** नहीं है, वहाँ विविध प्रकार की समस्याएं अव्यवस्था एवं कुप्रबन्धन व्याप्त हो जाता है। इसीलिए तो श्रीराम-भरत से पूछते हैं कि[9] कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुष पर भी दोष लगा दे तथा शास्त्रज्ञान में कुशल विद्वानों द्वारा उसके विषय में विचार कराये बिना ही लोभवश उसे आर्थिक दण्ड दे दिया जाता है? नरश्रेष्ठ! जो चोरी में पकड़ा गया हो, जिसे किसी ने चोरी करते समय देखा हो, पूछताछ से भी जिसके चोर होने का प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध और भी बहुत से प्रमाण हों, ऐसे चोर को भी तुम्हारे राज्य में धन के लालच से छोड़ तो नहीं दिया जाता है? रघुकुलभूषण! यदि धनी और गरीब में कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिए आया हो तो तुम्हारे

बहुज्ञ मंत्री धन आदि के लोभ को छोड़कर उस मामले पर विचार करते हैं न? निरपराध होने पर जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्यों की आँखों से जो आँसू गिरते हैं वे पक्षपातपूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं। कैकेयी कुमार! तुम्हारे राज्य की प्रजा कठोर दण्ड के कारण अत्यन्त उद्विग्न होकर तुम्हारे मंत्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती, जैसे पवित्र याजक पतित यजमान का तथा स्त्रियाँ कामचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती हैं, उसी प्रकार कठोरतापूर्वक अधिक कर लेने के कारण प्रजा तुम्हारा अनादर तो नहीं करती?

उपर्युक्त सभी प्रबन्धनों के लिए आवश्यक है राष्ट्र, राज्य, संस्था, समाज या परिवार के प्रमुख व्यक्ति का व्यक्तित्व, आचरण, कर्म-व्यवहार एवं लोकप्रियता। समाज के प्रत्येक व्यक्ति ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सभी जाति-वर्ग सम्प्रदाय में उसके प्रति स्नेह-सम्मान एवं आदर की भावना। अभिप्राय यह है कि प्रमुख व्यक्ति का **वैयक्तिक प्रबन्धन, व्यक्तित्व प्रबन्धन, लोकमत प्रबन्धन कैसा हो?** इन्हीं तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए श्रीराम, भरत से कहते हैं[10] राघव! क्या तुम वृद्ध पुरुषों, बालकों और प्रधान-प्रधान वैद्यों का आन्तरिक अनुराग, मधुर वचन और धनदान इन तीनों के द्वारा सम्मान करते हो? गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चैत्य वृक्षों और समस्त पूर्ण काम ब्राह्मणों को नमस्कार करते हो न? विजयी वीरों में श्रेष्ठ, समयोचित कर्तव्य के ज्ञाता तथा दूसरों को वर देने में समर्थ भरत! क्या तुम समय को विभाग करके धर्म, अर्थ और काम का योग्य समय में सेवन करते हो? क्या तुम अपनी स्त्रियों को संतुष्ट रखते हो? क्या वे तुम्हारे द्वारा भली-भाँति सुरक्षित रहती हैं? तुम उन पर अधिक विश्वास तो नहीं करते? उन्हें अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते? महाप्राज्ञ! सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले ब्राह्मण, प्रवासी और जनपदवासी मनुष्यों के साथ तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं न? राजा के चौदह दोष शास्त्रों में गिनाये गये हैं, क्या तुम इन दोषों का सदा परित्याग करते हो? क्या तुम त्यागने योग्य दोषों को त्यागकर ग्रहण करने योग्य गुणों को ग्रहण करते हो न? तुम नीतिशास्त्र की आज्ञा के अनुसार चार या तीन मंत्रियों के साथ सबको एकत्र करके अथवा अलग-अलग मिलाकर सलाह करते हो? क्या तुम वेदों की आज्ञानुसार काम करके उन्हें सफल करते हो? क्या तुम्हारी क्रियाएं सफल (उद्देश्य की सिद्धि करने वाली) हैं। क्या तुम्हारी स्त्रियाँ भी सफल (सन्तानवती) हैं? और क्या तुम्हारा शास्त्रज्ञान भी विनय आदि गुणों का उत्पादक होकर सफल हुआ है? रघुनन्दन! तुम स्वादिष्ट अन्न अकेले ही तो नहीं खा जाते? उसकी आशा रखने वाले मित्रों को भी देते हो न? हमारे पिताजी जिस वृत्ति का

आश्रय लेते हैं। हमारे प्रपितामहों ने जिस आचरण का पालन किया है, सत्पुरुष भी जिसका सेवन करते हैं और जो कल्याण का मूल है, उसी का तुम पालन करते हो न? रघुनन्दन! मैंने जो कुछ भी कहा है, तुम्हारी बुद्धि का भी ऐसा ही निश्चय है न? क्योंकि यह विचार आयु और यश को बढ़ाने वाला तथा धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि करने वाला है।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग-100, श्लोक सं. 7 से 14 तक
2. वही, श्लोक सं. 15, 16 एवं 22 से 26 तक
3. वही, श्लोक सं. 18, 19, 20, 12
4. वही, श्लोक सं. 29, 35, 36, 37
5. वही, श्लोक सं. 30, 31
6. वही, श्लोक सं. 32, 33, 34
7. वही, श्लोक सं. 40-50, 53
8. वही, श्लोक सं. 52, 54, 17, 55, 62
9. वही, श्लोक सं. 56, 57, 58, 59, 27, 28
10. वही, श्लोक सं. 60 से 75 तक

16

वाल्मीकि रामायण में गुरुकुल शिक्षा
(गुरु-शिष्य संबंध)

प्राचीन काल से ही भारत शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहा है। समय-समय पर अनेक विद्वान बाहर से इस देश में आकर उच्च ज्ञान द्वारा अपने को लाभान्वित करते रहे हैं। वैदिक युग में ही इस देश में शिक्षा का व्यापक प्रचार हो गया था। उपनयन संस्कार हो जाने के पश्चात् बालक गुरु के आश्रम में जाकर निवास करता था और वहीं "शिष्यवृत्ति" करता हुआ गुरु से निजानुकूल शिक्षार्जन करता था। रामायण काल में विद्याध्ययन पर ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं था, अपितु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी थे और प्रत्येक को प्रारम्भिक बौद्धिक एवं धार्मिक शिक्षा सामान्य रूप से मिलती थी। दशरथ के राज्य का वर्णन करते हुए वाल्मीकि स्वयं इस तथ्य का समर्थन करते हैं[1] **नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित्।** दशरथ के राज्य में ऐसा कोई भी नास्तिक, असत्यवादी, नानाशास्त्रों से अनभिज्ञ अथवा अविद्वान नहीं था। इसका तात्पर्य है कि तत्कालीन समाज में शिक्षा का व्यापक प्रसार था तथा प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित था।

रामायणकालीन शिक्षा का उद्देश्य

सच्चे अर्थों में व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से सभ्य, सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित बनाना था। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थी को व्यायाम, मृगया, युद्ध शिक्षण द्वारा सुगठित, शक्तिशाली एवं हृष्ट-पुष्ट, आरोग्य देह से सम्पन्न करना भी तत्कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। रामायण काल युद्ध प्रधान था। अतः धनुर्विद्या अथवा युद्ध विद्या शिक्षा के विषयों में प्रमुख था। इस समय विद्यार्थी को युद्ध विद्या का सर्वांगीण प्रशिक्षण देना शिक्षा का अनिवार्य उद्देश्य था।

तत्कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्या द्वारा विनीत बनाना था। विनय का

अर्थ आत्मसंयम था। यह निश्चय ही मनुष्य के चरित्र का सर्वश्रेष्ठ धन है, इसके अभाव में शिक्षित मनुष्य भी मूर्ख है। राम का परिचय देते हुए हनुमान कहते हैं **'रामो विद्याविनीतश्च[2]'** अर्थात् विद्याध्ययन के कारण पूर्णरूप से विनम्र हैं। राजा दशरथ के मंत्री भी 'विद्याविनीत' थे[3]। आश्रम में निवास करते हुए विद्यार्थी को स्वच्छता, शिष्टाचार, विनम्रता, सौहार्द्रता एवं सुशीलता की शिक्षा दी जाती थी। वह सच्चे अर्थों में एक सभ्य, अनुशासित नागरिक बनने के लिए अपने को तैयार करता था, जिनमें ये गुण नहीं होते थे, उनकी शिक्षा निरर्थक थी। तभी राम भरत से पूछते हैं[4] क्या तुम्हारा श्रुत अर्थात अध्ययन सफल है? इसका तात्पर्य यह है कि वास्तव में तुम विद्या पढ़ने के कारण उदारशील विनय से युक्त हो?

शिक्षा प्राप्त करने की अवधि

यूं तो ब्रह्मचर्य की सम्पूर्ण अवधि (25 वर्ष) शिक्षा प्राप्त करने का समय था किन्तु सभी बालक 25 वर्ष तक शिक्षा नहीं प्राप्त करते थे और न ही रामायण काल में यह आवश्यक था कि 25 वर्ष तक अध्ययन करना ही है। सामान्यतः 16वां वर्ष बाल्यावस्था की समाप्ति का सूचक माना जाता था। इस समय तक क्षत्रिय कुमार विभिन्न शस्त्रों का प्रयोग करना सीख लेता था। जब विश्वामित्र राक्षसों के विनाश हेतु राम को मांगने आए तो दशरथ ने कहा कि[4] **ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।** अभी तो मेरे राम सोलह वर्ष से भी कम के हैं इनमें तो अभी राक्षसों से युद्ध करने की योग्यता भी नहीं है।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित गुरु का स्वरूप

शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख रूप से चार तत्त्व उललेखनीय हैं गुरु, शिक्षा, विद्यालय (शिक्षण संस्था) एवं शिक्षा के विषय (पाठ्यक्रम)। इन तत्त्वों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान गुरु का है। गुरु के बिना अन्य तत्वों का न तो कोई मूल्य है और न ही अस्तित्व। वाल्मीकि रामायण के अनुशीलन से तत्कालीन गुरु के अत्यंत ज्ञाननिष्ठ तपस्वी, सफल विद्या विशारद एवं त्रिकालदर्शी स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान होता है। राम के शिक्षा गुरु महर्षि विश्वामित्र अत्यंत ज्ञानी एवं तपस्वी थे जिनकी महत्ता एवं विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए वशिष्ठ राजा दशरथ से कहते है[5] **'एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम्'।** ये विश्वामित्र विद्या के द्वारा ही संसार में चढ़े बढ़े हैं। तपस्या के तो ये विशाल भंडार हैं। सभी अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता हैं तथा जो अस्त्र-शस्त्र अभी तक उपलब्ध नहीं हैं, उनकों भी उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हैं। इन धर्मज्ञ महात्मा विश्वामित्र जी से भूत और भविष्य की कोई बात छिपी नहीं है। ये महातेजस्वी तथा महायशस्वी हैं। इसी प्रकार जनक भी विश्वामित्र की प्रशंसा करते हुए कहते

हैं कुशिकनन्दन! आपकी तपस्या अप्रमेय है। आपका बल अनन्त है तथा आपके गुण भी सदा माप और संख्या से परे हैं[6]।

इस प्रकार विश्वामित्र के उपर्युक्त गुणों की विशद चर्चा से तत्कालीन गुरु (शिक्षक) के स्वरूप का स्पष्ट परिज्ञान हो जाता है। यही नहीं वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र के अतिरिक्त कतिपय अन्य शिक्षा गुरुओं का भी उल्लेख मिलता है जिनके मन, कर्म एवं वचन की पवित्रता, तपश्चर्या, विद्वत्ता आदि का सम्यक् परिचय मिलता है। इनमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, मतंग, भरद्वाज, सुतीक्ष्ण, तथा अगस्त्य आदि उल्लेखनीय हैं। ये सभी गुरुकुल परम्परा के अनुसार शिष्यों को शिक्षार्जन कराते थे। इनके तपोमय स्वरूप, विद्वत्ता तथा महत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा ग्रंथ में अनेक स्थलों पर किया गया है।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के अनुसार तत्कालीन शिक्षा गुरु विविध विषयों का ज्ञाता, महान तपस्वी, सदाचारी, विवेकी एवं महिमामण्डित था। आज की तरह वह किसी एक विषय का विशेषज्ञ अथवा ज्ञाता नहीं था, अपितु सारी विद्याओं में निष्णात होना उसके लिए परमावश्यक था, जिससे वह सभी विद्यार्थियों को उनके अनुकूल विविध विषय की शिक्षा देने में समर्थ हों।

गुरुओं की उपाधियां

समाज में गुरु का अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान था। माता-पिता और ज्येष्ठ भ्राता के समान गुरु की भी गणना शिष्य के पितरों में की जाती थी, क्योंकि वह उसे विद्या का श्रेष्ठ दान देता था। वसिष्ठ ने आचार्य को माता-पिता से भी श्रेष्ठ स्थान दिया है, क्योंकि वह शिष्य रामायण में ब्रह्मवादी, शास्त्रों एवं वेद के व्याख्याताओं का द्योतक है। ये ब्रह्म अर्थात वेद के पारदर्शी विद्वान होते थे। सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि कश्यप वसिष्ठ आदि सभी ब्रह्मवादी ऋत्विज थे।[13]

शिक्षक

ललित कलाओं के अध्यापक शिक्षक कहलाते थे। तुम्बरू अप्सराओं के गान विद्या के शिक्षक थे। भरद्वाज अप्सराओं के साथ-साथ तुम्बरू को भी भरत का आतिथ्य करते हेतु आह्वान करते हैं[14]। इससे स्पष्ट है कि रामायणकालीन शिक्षा के अन्तर्गत संगीत आदि कलाओं का शिक्षण-प्रशिक्षण बहुप्रचलित था।

परिव्राजक

रामायण में परिव्राजक उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। जिसने सन्या सव्रत को धारण कर लिया है। ये निवृत्तिमार्गी होते थे और इतस्ततः भ्रमण करते हुए निर्वेद और वैराग्य जो कि जीवन के ध्येय हैं का उपदेश और प्रचार करते थे।

रामायण काल में भिक्षु एवं भिक्षुणी साधुवृत्ति धारण करने वाले का द्योतक हैं। ये उपदेश द्वारा ज्ञान देते थे। राजदूतों से भी इनका सम्पर्क रहता था। सीता राम से कहती हैं जब मैं कन्या थी तब मैंने पिता के गृह में साधुवृत्ति वाली भिक्षुणी से अपने वनवास की बात सुनी थी[15]। इसका तात्पर्य है कि ये भिक्षुणियां भूत एवं भविष्य का ज्ञान रखती थी, उपदेश देती थी तथा ज्योतिष विद्या आदि का शिक्षण कार्य भी करती थी।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित शिष्य का स्वरूप

वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त संदर्भों से तत्कालीन गुरु की महत्ता एवं विद्वत्ता प्रकाश में आ जाती है तथा उनके स्वरूप से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे सभी ज्ञाननिष्ठ तपस्वी थे, जो प्रायः किसी जंगल अथवा एकान्त स्थान में आश्रम बनाकर रहते थे तथा वहीं शिष्यों को शिक्षार्जन कराते थे।

शिष्य वृत्ति

आश्रम में रहकर गुरु का प्रत्येक कार्य करते हुए विद्याभ्यास एवं आश्रम की व्यवस्था तथा अनुशासन में रहते हुए शिष्यवृत्ति का पालन किया जाता था। इसी प्रकार विश्वामित्र के सम्पर्क में रहते हुए राम एवं लक्ष्मण भी तृणशय्या पर शयन करते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी जीवन बड़ा ही कठोर एवं कष्टप्रद था। आज की तरह सर्वसुविधा सम्पन्न एवं आनन्दमय स्थिति नहीं थी।

गुरु कार्य

गुरु के प्रति श्रद्धा-विश्वास एवं भक्ति-भाव रखना शिष्य का सर्वप्रमुख कर्तव्य था गुरु की सेवा-सुश्रूषा एवं उनके व्यक्तिगत कार्यो को करना 'गुरूकार्य' कहलाता था। आश्रम में निवास करने वाला विद्यार्थी आश्रम की पूर्णरूप से सफाई करता था, झाड़ू इत्यादि लगाता था[16]। वन से लकड़ी काट कर लाता था[17]। गुरु की यज्ञ निमित्त समस्त सामाग्रियों का अर्थात् कांड, कुश, समिधा, फल-पुष्प आदि को एकत्र करता था[18] और शिक्षा द्वारा अन्न संग्रह करता था। उदाहणार्थ[19] मतंगाश्रम का वर्णन करते हुए कबंध राम से कहता है वहां पहले मतंग मुनि के शिष्य गण निवास करते थे। जिनका चित्त सदा एकाग्र एवं शान्त रहता था। वे अपने गुरु मतंग मुनि के लिए जब जंगली फल फूल ले आते और उनके भार से थक जाते, तब उनके शरीर से जो पसीने की बूंदें पृथ्वी पर गिरती थीं, वे ही उन मुनियों को तपस्या के प्रभाव से तत्काल फूल के रूप में परिणत हो जाती थीं। राघव! पसीने की बूंदों से उत्पन्न होने के कारण वे फूल नष्ट नहीं होते हैं। गुरुकार्य का यह अनुपम उदाहरण है।

दिनचर्या

शिष्य प्रतिदिन ब्रह्मचर्य मुहूर्त में उठकर स्नान करने के पश्चात प्राप्तःकालीन सन्ध्या, प्रार्थना, अग्निहोत्रादि कर्म करने के पश्चात् गुरु को प्रणाम करता था एवं अन्य कार्य पूर्ण करता था। पुनः सन्ध्याकाल में वह संध्या प्रार्थना एवं जप होम यज्ञादि करता था। ये सभी कर्म शिष्य के नित्य कर्म थे, जिन्हें करना अनिवार्य होता था क्योंकि आश्रम का ऐसा नियम था। विद्यार्थी इन सभी कर्मकांडों को नियमित रूप से करता हुआ निश्चय ही बड़ा दुर्बल हो जाता था। जिसकी सूचना (उपकर्शिता) पद द्वारा मिलती है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से राम भी अत्यंत दुर्बल (उपकर्शित) हो गये थे। विश्वामित्र, वसिष्ठ, मतंग तथा अन्य सभी गुरुओं के आश्रम में रहने वाले शिष्यों की उपर्युक्त दिनचर्या एवं व्यवस्था रामायण में दर्शनीय है।

गुरु शिष्य संबंध

वाल्मीकि रामायण के पूर्वोक्त विवरण से तत्कालीन गुरू और शिष्य के स्वरूप का सविस्तार परिचय प्राप्त हो जाता है। सम्प्रति विचारणीय प्रश्न यह है कि वास्तव में तत्कालीन गुरु और शिष्य के बीच कैसा संबंध था, उनके बीच कितनी सन्निकटता थी, दोनों में व्यावहारिक एवं वैचारिक स्तर पर कैसा सामंजस्य था। गुरु के प्रति शिष्य की कैसी सादर बुद्धि एवं विनीत भाव था तथा शिष्य के प्रति गुरु को कितना स्नेह प्रेम था आदि।

वस्तुतः वाल्मीकि रामायण हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का एक मात्र ऐसा आदर्श ग्रंथ है जिसमें परिवार, जाति, समाज तथा एक-एक व्यक्ति के बीच क्या-क्या उच्च आदर्श संबंध हो सकते हैं, इन सारी बातों का यह आकर ग्रंथ है। भाई-भाई, मां, बेटा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू एवं गुरु-शिष्य के बीच उच्च आदर्श संबंध अत्यंत श्लाघनीय एवं सदा अनुकरणीय है। उदाहरणार्थ गुरु विश्वामित्र और शिष्य राम का संबंध। साक्षात् भगवान राम ने महर्षि विश्वामित्र को अपना शिक्षा गुरु सहर्ष स्वीकार करने के पश्चात् जंगल में अहर्निश उनके साथ रहते हुए, सोते-उठते, चलते-फिरते प्रतिपल विनीत भाव से उनकी आज्ञापालन में ही अपने को धन्य मानते थे। स्त्रीवध पापपूर्ण कार्य होते हुए भी विश्वामित्र की आज्ञा के कारण राम ताड़का का वध करने के लिए तत्पर हो जाते हैं,[20] और कहते हैं भगवान अयोध्या में मेरे पिता महामना महाराज दशरथ ने अन्य गुरुजनों के बीच मुझे यह उपदेश दिया था कि बेटा तुम पिता के कहने से पिता के वचनों का गौरव रखने के लिए कुशिकनन्दन विश्वामित्र की आज्ञा का निःशंक होकर पालन करना। कभी भी उनकी बात की अवहेलना न करना। हे भगवन, गौ, ब्राह्मण तथा समूचे देश का हित करने के लिए

मैं प्रभावशाली महात्मा के आदेश का पालन करने को सब प्रकार से तैयार हूँ[21]। गुरु की आज्ञापालन का यह कितना अनुपम उदाहरण है। यही नहीं, विश्वामित्र के साथ रहते हुए उनकी सारी गुरुजनोचित सेवाएं करके हर्ष का अनुभव करते हुए सरयूतट पर रात्रि सुखपूर्वक शयन करते हैं[22]।

गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजे।
उषुस्तां रजनी तत्र सरयूवां ससुखं त्रयः ॥

वहां तृण की शय्या पर जो उनके सोने योग्य नहीं थी उस पर सोये थे। महर्षि विश्वामित्र अपनी मधुर वाणी द्वारा उन दोनों के प्रति लाड़-प्यार प्रकट कर रहे थे। उससे उन्हें वह रात बड़ी सुखमय प्रतीत हो रही थी[23]।

शिष्य जितना अधिक विनीत था उससे कई गुना अधिक गुरु उसे प्रेम करता था। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के प्राणप्रिय शिष्य थे। राम-लक्ष्मण के द्वारा पूछने पर विश्वामित्र प्रेमपूर्वक उन्हें विविध प्रकार की पौराणिक कथाएँ सुनाते, उनको प्रतिपल प्रसन्न रखते, रात्रि आने पर शयन के लिए आदेश करते तथा प्रातः होने पर निद्रा त्यागने को भी कहते। शोणभद्र तट पर शयन करते हुए राम-लक्ष्मण को प्रभात होने पर विश्वामित्र जगाते हुए कहते हैं श्रीराम! रात बीत गयी। सबेरा हो गया। तुम्हारा कल्याण हो! उठो! उठो और चलने की तैयारी करो[24]

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोतिष्ठ भद्रं ते गमनायभिरोचय ॥

यह है गुरु और शिष्य का स्नेह-संबंध। यही कारण है कि गुरु विश्वामित्र ने योग्य एवं प्राणप्रिय शिष्य राम को सारे दिव्यास्त्र प्रदान करने में तनिक भी संकोच न किया। गुरु विश्वामित्र और राम के अनुपम स्नेह संबंध का मापदण्ड प्रस्तुत पंक्तियों से भी प्रकट होता है। ताड़का वध के उपरान्त राम की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र जी कहते हैं[25] महाबाहो! मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया। तुमने गुरु की आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया। तुमने इस सिद्धाश्रम का नाम सार्थक कर दिया-

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ॥

शिष्य की योग्यता, कुशलता एवं वीरोचित कार्य से गुरु को कैसी प्रसन्नता होती है तदुपरान्त वह शिष्य की कैसी प्रशंसा करता है तथा कितना स्नेह करता है, आदि बातें उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाती हैं।

शिष्य के लिए गुरु ही सर्वस्व है। वह कभी भी अपने गुरु की शिकायत, उनका अपमान, तथा उनका अहित सुनने-सहने को तैयार नहीं होता। यही कारण

है कि जब वसिष्ठ ने त्रिशंकु का यज्ञ करने से इन्कार कर दिया तो त्रिशंकु उनके शिष्यों के पास जाकर निवेदन करने लगे कि आप लोग मेरा यज्ञ पूर्ण कराकर मेरी सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा को पूर्ण करें। इस पर वसिष्ठ मुनि के 100 पुत्र कुपित होकर बोले दुर्बुद्धे! तुम्हारे सत्यवादी गुरु ने जब तुम्हें मना कर दिया है, तब तुमने उनका उल्लंघन करके दूसरी शाखा का आश्रय कैसे लिया? जिस यज्ञ कर्म को उन भगवान वसिष्ठ मुनि ने असंभव बताया है उसे हमलोग कैसे कर सकते हैं। अतः तुम वापस लौट जाओ। भगवान वसिष्ठ तीनों लोकों का यज्ञ कराने से समर्थ हैं, हम लोग उनका अपमान कैसे कर सकेंगे। इतने पर भी त्रिकुंश ने जब पुनः हठ की, तब उन गुरुपुत्रों ने उन्हें चाण्डाल होने का शाप दे दिया[26]।

उपर्युक्त संदर्भ से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन शिष्य गुरु के किंचित अपमान को भी सहन करने मे समर्थ नहीं था। यही कारण है कि गुरु वशिष्ठ की अवमानना करने वाले राजा त्रिशंकु को उनके शिष्यों ने चाण्डाल होने को शाप दे दिया। इस प्रसंग से तत्कालीन शिष्यों के तपोबल, महिमा एवं गरिमा का तो पता चलता ही है साथ ही गुरु-शिष्य के अनुपम स्नेह संबंध का भी परिचय प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मतंग ऋषि के शिष्यों की आज्ञाकारिता तथा गुरु के प्रति उनकी भक्ति का दर्शन उस समय होता है जब वे गुरु के लिए जंगल से फल-फूल लाते समय अत्यन्त थक जाते हैं तथा उनके शरीर से पसीने की बूँदें पृथ्वी पर गिर कर पुष्प रुप में परिणत हो जाती है[27]। पुनः मतंग की शिष्या शबरी की गुरुभक्ति के विषय में कहना ही क्या है। स्वयं राम उसके गुरुभक्ति की प्रशंसा करते हुए पूछते हैं चारुभाषिणी! तुमने जो गुरुजनों की सेवा की है वह पूर्णरूप से सफल हो गयी है न। इस पर शबरी ने कहा-आज मेरा जन्म भी सफल हो गया तथा गुरुजनों की सेवा भी पूर्ण हो गयी। इसके बाद शबरी गुरु मलंग की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनके माहात्म्य के विषय में राम को बताती है।[28]

गुरु और शिष्य के कतिपय उपर्युक्त उद्धरणों से इस पवित्र संबंध का ज्ञान होता है। इतना ही नहीं शिष्य, गुरु-पत्नी को मां के समान गुरु को पिता के समान तथा गुरु की कन्या को बहन के समान उच्च स्थान देकर सम्मानित करता था। इससे विरुद्ध मार्ग का अनुगमन करने वाला पाप एवं दण्ड का भागीदार होता है उदाहरणार्थ उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत गुरु शुक्राचार्य की अनुपस्थित में राजादण्ड ने कामान्ध होकर उनकी पुत्री अरजा के साथ बलात्कार किया था। परिणामस्वरूप शुक्राचार्य ने उसके राष्ट्र को भस्म कर दिया।[29] जो बाद मे दण्डकारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

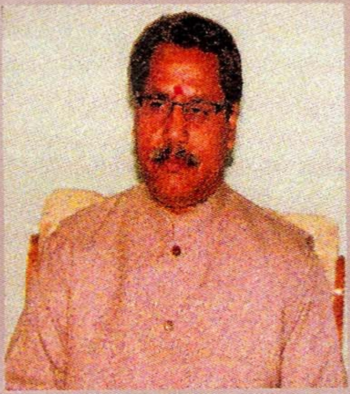
इस प्रकार उपर्युक्त रामायण के उद्धरणों से तत्कालीन गुरु-शिष्य के पुनीत संबंध का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। पुनश्च आज जबकि शिक्षा जगत के अन्तर्गत गुरु-शिष्य के बीच एक खाई सी पड़ गयी है, दोनों में वह पुनीत संबंध नहीं दिखाई पड़ता है, वास्वत में इसका कारण क्या हो सकता है यदि इस प्रश्न का समधान खोजते हैं तो यह पता चलता है कि सामान्य तौर पर आज गुरु शिष्य में चारित्रिक एवं नैतिक ह्रास हो चुका है। साथ ही आज का शिक्षक मात्र वेतनभोगी हो गया जिसकी अध्ययन-अध्यापन में कोई विशेष रुचि नहीं रह गयी है। पुनः यदि अध्यापक विद्यार्थी को कुछ सिखाना भी चाहता है तो विद्यार्थी उससे कोसों दूर रहता है। यदि विद्यार्थी शिक्षक से अपना सानिध्य बनाए रखे तो आज भी गुरु और शिष्य का वही संबंध पुनर्स्थापित हो सकता है। गुरु और शिष्य के बीच संबंध का एक मात्र आधार शिष्य की गुरु में श्रद्धा, आदर, एवं विश्वास है। आज ये भावनाएं सम्पूर्ण विद्यार्थी जगत के मानस से उतर चुकी है। अतएव यदि हम रामायणकालीन गुरु शिष्यों के संबंधो एवं आदर्शों का अनुगमन मनसा, वाचा, कर्मणा करते रहें तो गुरु-शिष्य में वही रामायणकालीन आदर्श संबंध पुनर्स्थापित हो सकता जिससे शिक्षा जगत की मूलभूत समस्या का समाधान हो जाएगा।

संदर्भ

1. वा. रा. 1/6/14
2. वा. रा. 1/7/6-8
3. वा. रा. 1/7/7-8
4. वा. रा. 1/20/2
5. वा. रा. 1/21/10-21
6. वा. रा. 1/65/35
7. वा. रा. 2/173/3
8. वा. रा. 2/100/13
9. वा. रा. 2/103/3
10. वा. रा. 2/103/3
11. वा. रा. 2/108/4
12. वा. रा. 1/1/1
13. वा. रा. 1/11/3
14. वा. रा. 2/85/16
15. वा. रा. 2/26/11

16. वा. रा. 1/11/19
17. वा. रा. 3/10/49
18. वा. रा. 3/1/4-5
19. वा. रा. 3/73/23-25
20. वा. रा. 1/24/16
21. वा. रा. 1/26/2-5
22. वा. रा. 1/21/19
23. वा. रा. 1/22/24
24. वा. रा. 1/35/2
25. वा. रा. 1/30/26
26. वा. रा. 1/57/10-22
27. वा. रा. 3/73/23-25
28. वा. रा. 3/73/10-27
29. वा. रा. 7/80/1-18

◆ ◆ ◆ ◆



प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

जन्म : 1 मार्च, 1960, ग्राम–मैनसिल (गुलजारगंज) जौनपुर (उ.प्र.) के यशस्वी माता-पिता–श्रीमती सावित्री देवी–पं. श्री वंशराज दुबे के आँगन में पल-बढ़कर बड़ा हुआ।

शिक्षा : एम. ए., डी. फिल्., डिप् (लिंग्विस्टिक्स), डी. लिट्. (मानद)

प्रकाशित ग्रंथ : (1) रामायणमंजरी का साहित्यिक अनुशीलन, (2) सूक्ति सुधा, (3) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम, (4) ग्राम्य गीतांजलि–(गीत काव्य) (5) हनुमानधारा (खण्डकाव्य), (6) रामकथामंदाकिनी (शोध-निबंध संग्रह), (7) ईशावास्योपनिषद् (सारस्वती टीका), (8) भाषाविज्ञान की रूपरेखा, (9) विकलांग दर्शन, (10) महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य जी का संस्कृत वाङ्मय को अवदान।

अध्यापन : सन् 1987 से संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अध्यापन यात्रा प्रारंभ कर महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.) में यशस्वी शिक्षक के रूप में विख्यात होकर जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ. प्र.) में 1 अगस्त 2001 से संस्कृत आचार्य एवं विभागाध्यक्ष तथा कला संकाय के अधिष्ठाता के रूप में पदस्थ।

प्रशासनिक अनुभव : कुलपति, प्रति कुलपति, कुलसचिव, अधिष्ठाता, विभागाध्यक्ष, प्रभारी आचार्य पुस्तकालय, मुख्य कुलानुशासक, छात्र कल्याण अधिष्ठाता एवं शोध निदेशक आदि विभिन्न शैक्षणिक एवं प्रशासनिक पदों पर कार्यानुभव।

पुरस्कार : अलंकरण : साहित्य कला शिरोमणि, साहित्य महोपाध्याय, अवध भारती भूषण, तुलसी भारती समलंकरण, कवि रत्न, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक सम्मान, राष्ट्रीय शिक्षा रत्न, पूर्वांचल विद्वद्-रत्न, अक्षय गौरव सम्मान, साहित्य रत्नाकर, शताब्दी सम्मान, हेल्प यू अवार्ड, उ.प्र. रत्न सम्मान आदि।

सम्प्रति : कुलपति, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

स्थायी निवास : 'सारस्वतम्' संत कबीर मार्ग, जानकीकुण्ड, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

मोबाइल : 09452032221, 07509687119

ई-मेल : profyogeshdubey@gmail.com.